प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७
मुल्य

एक रुपया

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

हिंसा का मुकाबला किस प्रकार किया जाय, यह समस्या बहुत समय से देश के सामने रही है। जब से देश आजाद हुआ है, तब से तो इस समस्या की ओर राष्ट्र के चिंतकों तथा कर्णधारों का ध्यान और भी आकृष्ट हुआ है। कुछ समय पहले इसी विषय पर एक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी– "हिंसा का मुकाबला कैसे करें ?" उसमें शांति-सेना की स्थापना पर जोर दिया गया था और बताया गया था कि उसका संगठन किस प्रकार किया जा सकता है ।

शांति-स्थापना के विषय को लेकर ही यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसमें शांति-सेना के साथ-साथ अन्य कई बातों पर भी विचार किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस पुस्तक में पर्याप्त विचार-सामग्री दी गई है और हमें आशा है कि वह लोगों को सोचने के लिए प्रेरित करेगी ।

पुस्तक के अंत में पू० विनोबाजी के कुछ शांति-सेना संबंधी प्रवचन भी दे दिये गए हैं। पाठक जानते हैं कि विनोबाजी एक महान चिंतक हैं और वह जिस किसी प्रश्न को लेते हैं, उसकी तह में जाते हैं। शांति-सेना के विचार की पृष्ठ भूमि तथा संगठन आदि के विषय में उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किये हैं, वे अत्यंत उपयोगी हैं ।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी—विशेषकर उन रचनात्मक कार्यकर्ताओं के लिए, जिन पर हिंसा का अहिंसात्मक ढंग से सामना करने का दायित्व है ।

—मंत्री

प्रास्ताविक

"हिंसा का मुकाबला कैसे करें ?" नामक एक पुस्तिका मैंने लिखी है जिसमें देश में शांति-स्थापना तथा शांति-दल के आयोजन के संबंध में कुछ विचार तथा सुझाव पाठकों के सामने रखे हैं। उसे देखकर पचासों, मित्रों साथियों, बुजर्गों ने, जिनमें भिन्न-भिन्न विचारों, संस्थाओं और संगठनों के प्रभावशाली प्रतिनिधि हैं, अपने सुझाव देने की कृपा की है। उनको ध्यान में रखकर यह दूसरी पुस्तिका मैंने तैयार की है। पहली पुस्तिका में विचार और सुझाव तो कई हैं, परंतु वे सब बिखरे हुए हैं। इसमें मैंने शांति-स्थापना संबंधी अपने विचार तथा सुझाव व्यवस्थित ढंग से लिखने की कोशिश की है। अब भी यह तो नहीं कहा जा सकता कि शांति-स्थापना की दृष्टि से यह परिपूर्ण है, परंतु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस संबंध में मुझे पाठकों से जो-कुछ कहना है, वह ठीक ढंग से आ गया है। यह पुस्तिका पिछले दिसंबर में तैयार हो चुकी थी—प्रकाशित होने का अवसर अब आया है।

शांति-विचार के बारे में सहसा मतभेद न होगा, यह मैं जानता हूं। शांति-योजना में व्यावहारिकता-अव्यावहारिकता, उपयोगिता-अनुपयोगिता को लेकर मतभेद हो सकता है। प्रयोग और अनुभव से वह दूर हो सकता है और विचारों में संशोधन भी किया जा सकता है। कोई भी विचार और आयोजन प्रयोग और अनुभव की कसौटी पर कसे बिना खरे और स्थायी नहीं समझे जा सकते। अतः प्रयोग और अनुभव की आवश्यकता है। मुझे बहुत खुशी है कि पूज्य विनोबा ने इसका प्रयोग आरंभ कर दिया है। उन्होंने शांति-सेना की स्थापना पर बहुत बल देना शुरू कर दिया है। उनसे बढ़कर इसका अधिकारी इस समय शायद ही दूसरा कोई हो। वह इस विषय में निरंतर प्रकाश डालते रहते हैं। इसके एक खंड में उनके भाषणों, लखों आदि का संग्रह दे दिया है। शांति-स्थापना अब कोरी चर्चा का विषय नहीं रहा, बल्कि प्रत्यक्ष कार्य की

कोटि में पहुंच गया है। अतः जिस उद्देश्य से मैंने ये पुस्तिकाएं लिखना शुरू किया था, उसकी सिद्धि के लक्षण प्रगट होते देखकर मैं परमात्मा के के प्रति प्रणत होता हूं। विनोबा के नेतृत्व में इसका संचालन इसकी सफलता का पूर्व चिह्न है। विनोबा से बढ़कर इसका अधिकारी नहीं—और इससे श्रेष्ठ जीवन-कार्य विनोबा के लिए भी दूसरा नहीं रहा। भगवान की इस देन पर कौन मुग्ध नहीं होगा ?

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तिका शांति-स्थापना की दिशा में ठीक-ठीक सहायक होगी।

गांधी आश्रम, हटुंडी —**हरिभाऊ उपाध्याय**
दीपावली, २०१४
२२ **अक्टूबर, १९५७**

विषय-सूची

सर्वोदय की बुनियाद

शांति-स्थापना

●

: १ :

शांति का विचार

शांति की ग्रावश्यकता सभी समय में ग्रौर सभी देशों में मानी गई है। फर्क यह है कि ग्रबतक शस्त्र के द्वारा, युद्धों के द्वारा शांति तथा न्याय की रक्षा का एक मार्ग चला ग्रा रहा था। ग्रब, खासकर गांधीयुग में, शांति ग्रर्थात ग्रहिंसा या शस्त्र-त्याग के द्वारा शांति ग्रौर न्याय की रक्षा का महत्व लोग मानने लगे हैं। इनमें केवल ग्रात्मशांति चाहनेवाले साधु, महात्मा, विरक्त, मुक्त, संन्यासी श्रेणी के ही लोग नहीं हैं, बल्कि समाज-सुधारक, देश-नेता, राष्ट्र-संचालक ग्रौर शासनाधिकारी भी हैं। हमारे राष्ट्रनेता जवाहरलालजी ने पंचशील की ग्रावाज बुलंद करके सारे संसार में एक शांति का वातावरण पैदा कर दिया है—नीचे से ऊपर तक सब लोग शांति के प्रत्यक्ष उपाय, राष्ट्रीय ग्रौर ग्रंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, सोचने लगे हैं। यह कोरा खयाली सवाल नहीं रहा, व्यावहारिक कोटि का माना जाने लगा है, व्यावहारिक रूप से इसपर विचार होने लगा है, शांति-दल बनाने, की तजवीजें चल रही हैं, शांति-प्रचारक ग्रौर शांति-स्थापक भिन्न-भिन्न संस्थाग्रों ग्रौर संगठनों का भी प्रादुर्भाव हो रहा है। गांधी ग्राश्रम, हटूंडी (ग्रजमेर) के द्वारा गांधी शांति-दल की स्थापना भी हो चुकी है, परंतु ग्रभी ग्राम लोगों में इसके प्रचार ग्रौर प्रसार की बहुत ग्रावश्यकता है।

शांति एक बुनियादी सवाल है। इसके बिना सर्वोदय की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। घर में, संस्था में, समाज में, राष्ट्र में, विश्व में नित्य कलह, ग्रशांति, संघर्ष के ग्रवसर उपस्थित होते हैं। छोटे-बड़े मतभेद, विवाद, ईर्ष्या-द्वेष बड़े-बड़े कलह ग्रौर संघर्ष का रूप धारण कर

लेते हैं । निजी और सार्वजनिक लाखों रुपयों का नुकसान, जान-माल की बरबादी, बहू-बेटियों और माताओं के अपमान की नौबत आती है । बड़े-बड़े युद्ध और अणु बम तक के भयंकर विनाशक आविष्कार इसीके परिणाम हैं । अतः यदि इनकी रोक न की जाय तो 'सर्वोदय' की आशा कैसे की जा सकती है ? इसके लिए सबसे पहले हमारे विचारों और भावनाओं में परिवर्तन करना होगा । शस्त्र, उपद्रव, युद्ध, हिंसाकांड के द्वारा इनका फैसला कराने की अपेक्षा, आपस के विचार-विनिमय, समझौते, पंच-फैसले, अदालत आदि शांतिमय तरीकों से ही छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े मतभेदों, विवादों और झगड़ों को निपटाने का महत्व समझना होगा । इसे तरजीह देनी होगी । हमारे मन और बुद्धि पर ऐसे संस्कार डालने होंगे, ऐसी प्रणालियां जारी करनी होंगी, और शांति-दलों की स्थापना करनी होगी । यह सारा कार्यक्रम तीन भागों में बैठ जाता है—(१) शांति के विचार और भावों का प्रसार (२) शांति के संस्कार मन-बुद्धि पर डालने के उपाय (३) प्रत्यक्ष शांति-भंग की अवस्था में शांति-पूर्वक शांति-स्थापना करने-वाले दल या दलों का संगठन । इस तीसरे भाग के फिर दो विभाग हो जाते हैं—निवारक और रक्षक । इनपर हम क्रमशः विचार करेंगे ।

इनमें पहले शांति के विचार को लें । शांति की महिमा हमें अशांति, हिंसा, उपद्रव के मुकाबले में समझाना है । हमें अपने घर का, संस्था का, समाज का नित्य अनुभव होता है । वह हमें अशांति की अपेक्षा शांति की ही ओर प्रेरित करता है । तो अब शांति और हिंसा इनमें कौन श्रेष्ठ है—इसकी जांच कैसे की जाय ? इसके लिए एक प्रयोग कीजिये । पहले आप यह मानकर चलिये कि हिंसा, कलह, उपद्रव अच्छी चीज है । जो अच्छी चीज है, उसे अपनाना चाहिए । खुद भी उसे लेना चाहिए । दूसरों को भी देना चाहिए । अपनी निजी, अपने घर की समस्याओं, कठि-नाइयों को हल करने के लिए आप यह निश्चय कर लीजिये कि मैं हिंसा, मार-काट, कलह, उपद्रव के द्वारा ही उन्हें सुलझाऊंगा । किसी भी दशा में अहिंसा, शांति, प्रेम, सहयोग, सद्भाव का आश्रय नहीं लूंगा क्योंकि

इन सबको हमने बुरा मान लिया है। जो बुरी बातें हैं उन्हें हमें छोड़ना है—निश्चयपूर्वक दृढ़ता से छोड़ना है। जो अच्छी बातें हैं, उन्हें उतनी ही दृढ़ता और निश्चय के साथ अपनाना है। तो अब हिंसा और उपद्रव के साथ ही अपने जीवन और दिवस का प्रारंभ करें। बच्चा समय पर नहीं उठा——लगा दिया एक चांटा। पत्नी ने चाय ठंडी कर दी——दीजिये दो-चार गाली, रसीद कीजिये एक-दो चांटे। पिताजी के कपड़े आपने ठीक-ठीक नहीं सिलाये——लगाई उन्होंने दो बेंत आपको। पड़ौसी ने कचरा आपके दरवाजे पर फेंक दिया——आप पहुंचे दलबल और लाठी लेकर उसे मारने। आपकी बछिया पड़ौसी के बाड़े में घुस गई और लौकी की बेल को खा गई। पड़ोसी आया कुल्हाड़ा लेकर आप पर हमला करने। दोनों तरफ से दल-बल आगे आया और हो गया फिसाद। यही दंगा बन गया। चौबीस घंटे आपके घर में, पड़ौस में, महल्ले में, गांव में, समाज में, संस्था में, राष्ट्र में——ऐसा ही सिलसिला चलता रहे, तब जरा कल्पना तो कीजिये, आपके घर का पड़ौस का, गांव का, महल्ले आदि का क्या हाल होगा? एक दिन में ही आप परेशान होकर पागल हो जायंगे। यदि यह अनुभव या अनुमान सही है तो फिर इस साधन, सिलसिले या रास्ते को छोड़ना चाहिए। उसे जो हम अच्छा मानकर चले थे, वह गलती थी। यह तो एक जंजाल खड़ा हो गया। तो अब क्या करना चाहिए?

जवाब साफ है। हिंसा, उपद्रव, मारकाट का रास्ता छोड़ने का निश्चय करना चाहिए। यह संकल्प करना चाहिए कि हम अपने घर, संस्था, महल्ला, गांव, समाज, राष्ट्र की समस्यायें, विवाद, झगड़े आदि शांति, सहयोग, सद्भावना, विचार-विनिमय तथा समझौते के आधार पर और इनके जरिये तय करेंगे। अब इसी तरह इस शांति और सद्भाव के साधन को आजमाकर देख लीजिये। आपको अशांति के मुकाबले में शांति के साधन ज्यादा सुखदायी मालूम होंगे। यदि यह बात सही है तो क्या अब भी आपको यह समझाने की आवश्यकता बाकी रहेगी कि अशांति की अपेक्षा, हिंसा की अपेक्षा शांति और अहिंसा का मार्ग और साधन अच्छे हैं?

यदि किसी की समझ में यह बात आ गई तो हमारा पहला काम, यानी शांति की महत्ता समझाने का, पूरा हो गया। लेकिन इतने से काम नहीं चलता। समझने के बाद बर्ताव भी होना चाहिए। समझने से बर्ताव ज्यादा मुश्किल है। उसमें हमें अपने स्वभाव, अपने संस्कार, अपने रहन-सहन, अपनी परिस्थिति, अपने रंग-ढंग सबके साथ लड़ना होगा। जो अशांति, उपद्रव, मारकाट के संस्कार मन पर पड़े हुए हैं, हिंसा की प्रेरणाओं से जो अबतक हम अपना जीवन, घर, आदि चलाते थे, अब उसे पलटकर अहिंसा या शांति की दिशा में ले जाना होगा। हिंसा की प्रेरणाओं को रोककर, अहिंसा की प्रेरणाओं को बलवान बनाना होगा। अर्थात अपने मन को अपनी समझ के अनुसार चलने पर समझाना, मनाना, और बाध्य भी करना होगा। इसमें कुछ समय लगेगा—कभी आप सफल होंगे—कभी विफल। कभी कटु अनुभवों से हताश होंगे तो कभी मीठे अनुभवों से हर्ष और आनंद भी होगा, उत्साह भी बढ़ेगा। इस तरह कशमकश के साथ हमें आगे बढ़ना होगा। इसके लिए हमें केवल अपने मन की तैयारी करना ही काफी न होगा—जीवन, घर, समाज के संचालन की उप-प्रणालियों को भी, नियमों को भी, आधारों और परंपराओं को भी बदलना होगा, जो हमारे मन पर अशांति के कुसंस्कार डाले हुए हैं या मजबूत किये हुए हैं।

पहले हम घर से लें। अब हमने यह निश्चय कर लिया है कि अपने तथा घर के सब प्रश्न अहिंसा और शांति के साथ निपटायेंगे। तो सबसे पहले क्या करना होगा। जहां-कहीं कोई प्रश्न या विवाद खड़ा हुआ कि हम फौरन बैठकर आपस में उसकी चर्चा करेंगे, उसके कारणों की खोज करेंगे, किसकी क्या गलती है, असावधानी है, यह देखेंगे। अपनी क्या गलती है, भूल है, भ्रम है, यह भी देखेंगे, यदि दूसरे के कसूर हैं तो उसे भी बतायेंगे। यदि हम इस प्रक्रिया का आश्रय लेते हैं और लेना ही चाहिए, तो, आप भी मानेंगे, कि आपका आधा काम हो गया—बहुत करके तो समस्या या विवाद इसी अवस्था या स्तर पर समाप्त हो जायगा। मगर फर्ज कीजिये कि आपस का यह विचार-विनिमय असफल रहा, कोई समझौता

न हो सका, तो फिर या तो आप अदालत में जायेंगे, या आपस में किसीको पंच बनाकर उसके सिपुर्द मामला कर देंगे और उसके फैसले को मंजूर कर लेंगे। अदालत भी एक तरह का शांति-मार्ग ही है। परंतु उसमें कानून-कायदे जाब्ते की इतनी उलझनें बढ़ गई हैं और कागजी लिखावट व सबूत का इतना झमेला हो गया है कि न तो न्याय जल्दी मिल पाता है, और न सही न्याय ही बहुत बार होता है। अतः पंच-फैसले का साधन अदालत से ज्यादा सुगम, सस्ता और सही न्यायदायी है और हो सकता है। यह प्रणाली केवल घर और संस्था ही नहीं, समाज, राष्ट्र और विश्व की व्यवस्था तथा शांति के लिए भी उपयोगी और हितकर होगी। यह इतनी कठिन भी नहीं है। तो हमें आज से ही इस प्रणाली को प्रचलित कर देना चाहिए। इसमें किसी कानून-कायदे जाब्ते का विशेष सवाल नहीं है—दोनों पक्ष जिसको ठीक समझें, जिनपर विश्वास हो, ऐसे को पंच बना लें। बस इतना ही करना होगा।

पंच भी दो तरह से बनाये जा सकते हैं—दोनों पक्ष मिलकर किसी एक व्यक्ति को चुन लें—या दोनों अपने-अपने विश्वास का एक-एक व्यक्ति चुन ले और उन दोनों में मतभेद हो तो वे दोनों एक तीसरे निष्पक्ष आदमी को सरपंच बनालें और उसकी सहायता से निर्णय करले। इसकी और और भी विधियां बताई जा सकती हैं। किंतु मूल बात यह है कि हम या तो आपस में समझौता कर लेंगे, या पंच-फैसले का सहारा ले लेंगे। किसी भी दशा में हम गाली-गलौज या मारपीट—हिंसा पर उतारू न होंगे।

इस तरह यदि हम प्रारंभ में ही सावधान रहेंगे, इस प्राथमिक विधि पर चलेंगे तो फिर आगे बड़े झगड़े और उपद्रव अपने-आप रुक जायेंगे। अतः शांति-स्थापना के लिए सबसे पहले यही कदम उठाया जाना चाहिए।

: २ :

शांति का संस्कार—१

नई तरह के न्यायालय हों

शांति के संस्कार मन पर डालने और जीवन को शांति के सांचे में ढालने के लिए कुछ उपाय बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिनमें एक तो यह कि हम देखें कि हमारे घर में शांतिमय साधनों का प्रवेश ही नहीं हो, प्रतिष्ठा भी हो। हमारे बच्चे, बहू-बेटियां, बड़े-बूढ़े सब आपस में विचार-विनिमय, समझौते और पंच फैसले के जरिये अपने मतभेद, विवाद, समस्याएं आदि हल करें। दूसरे हमें विद्यालयों में इस प्रणाली को दाखिल करना चाहिए। यदि हम विद्यालयों, छात्रालयों, संस्थाओं और संगठनों में इस भावना और इस प्रणाली का प्रवेश कर देते हैं और वह प्रतिष्ठित हो जाती है, तो हम आगे जाकर समाज में से अशांति और हिंसा का उच्छेद करने में कामयाब हो जाते हैं। यही नहीं बल्कि उसकी जड़ प्रारंभ में ही जमने नहीं पाती, या खोखली हो जाती है। पहले हम विद्यालय और छात्रालय को लेंगे।

हरएक विद्यालय और छात्रालय में बच्चों की एक अदालत बनाई जाय। बड़े विद्यार्थी न्यायाधीश हों। विद्यार्थी उनका चुनाव करें। न्यायाधीश समय-समय पर बदलते भी रह सकते हैं। अब फर्ज कीजिये कि लड़कों या लड़कियों अर्थात विद्यार्थियों में आपस में किसी बात पर झगड़ा हो गया। आज ऐसी हालत में विद्यार्थी क्लास-टीचर के पास शिकायत लेकर जाता है और वह जिस तरह ठीक समझता है, समझा-बुझाकर, डांट-डपटकर, उपेक्षा करके, या अंत में सजा देकर इस प्रश्न को समाप्त कर देता है और वह मन में संतोष मान लेता है कि उसने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया। लेकिन यह ठीक व काफी नहीं है। इसकी जगह अब यह तरीका जारी होना चाहिए--विद्यार्थी शिकायत लेकर आये तो

क्लास-टीचर या बोर्डिंग का सुपरिंटेंडेंट शिकायत सुनकर पहले उन्हें उलहना दे कि अरे तुम एक स्कूल के विद्यार्थी, एक छात्रालय के छात्र, भाई-बहन की तरह रहनेवाले, आपस में लड़ते हो ? यह तो अच्छा नहीं है। अच्छा जाओ, अब आपस में मिलकर समझौता करलो और देखो, एक-दूसरे की गलती या कुसूर न दिखाकर अपनी-अपनी गलती या कुसूर को देखने की कोशिश करो। २४ घंटे की मोहलत हम तुमको देते हैं। आपस में समझौता करके आ जाओ।

अब इससे कई फायदे हुए—पहला तो यह कि क्लास-टीचर का पढ़ाई का वक्त बच गया, उसकी जिम्मेदारी का बोझा भी कम हुआ, दूसरे बच्चों के मन पर संस्कार पड़ा आपस में न लड़ने का, खुद अपनी गलती देखने का, फिर आपस में समझौता कर लेने का। अर्थात पहले में उनका भ्रातृ-भाव बढ़ा, दूसरे में आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्ति, तीसरे में समझौता और सहयोग-वृत्ति की पुष्टि हुई। शांति-पालन और शांत-जीवन की यह बुनियादी बात आपने विद्यार्थियों को सिखाई।

अब यदि विद्यार्थी समझौता करके आ गए, तो आपका इस तात्कालिक झगड़े का ही नहीं, भावी शांति-स्थापना का काम भी सरल हो गया। वे दुबारा या तो आपस में झगड़ेंगे नहीं, यदि झगड़े, तो परस्पर आत्मनिरीक्षण के द्वारा विवाद को बढ़ायेंगे नहीं, बढ़ा तो आपस के समझौते से उसे निपटा लेंगे। मगर अब मान लीजिये कि समझौता नहीं हुआ, तो फिर क्लास-टीचर उस झगड़े को उनके न्यायालय में भेजें, जो उनकी अपनी और अपनी बनाई हुई है। न्यायालय में न्यायाधीश मामले को लेकर पहले उन्हें उलाहना दें कि अच्छा तुम लोग आपस में झगड़े भी और फैसला भी नहीं कर पाये ? यह तो अच्छी बात नहीं है। अच्छा हम फिर तुमको २४ घंटे का समय देते हैं। कलतक समझौता करके आ जाओ--नहीं तो फिर कल तुम्हारा मामला पेश होगा।

इससे उन्हें एक बार फिर झगड़ा न करने तथा समझौता करने की प्रेरणा मिली। इस दुबारा की प्रेरणा से उनके मन पर शांति, सहयोग, सद्भावना

के संस्कार और दृढ़ होंगे । अब भी यदि समझौता न हो, तो न्यायाधीश मामला सुनकर अपना फैसला देगा । न्यायाधीश आखिर तो विद्यार्थी ही है, उसकी सहायता के लिए शिक्षक रहेंगे । फैसला देने के बाद न्यायाधीश फरीकैन से पूछ ले कि बोलो भाई—इंसाफ ठीक हुआ या नहीं ? यदि वे कहें कि नहीं, तो न्यायाधीश एक बार फिर पुनर्विचार कर ले—वरना अपने फैसले को अंतिम मानकर सुना दे ।

अब आया सवाल सजा का । सजाओं की वर्तमान परिपाटी अच्छी नहीं है । उसकी जगह हमारी राय में दूसरी स्वस्थ और शिक्षा तथा संस्कार-दायक प्रणाली जारी करनी चाहिए । हमारी राय में विद्यार्थी-संघ के द्वारा सजाओं की एक सूची स्वीकृत होनी चाहिए । उनमें कोई-न-कोई शारीरिक श्रम—वह भी उत्पादक श्रम, होना चाहिए । चरखा कातना, पेड़ सींचना, गोबर उठाना, खेत में पानी देना आदि । आमतौर पर हम इन्हें दैनिक कर्त्तव्य या यज्ञ रूप में करते हैं । परंतु इस समय दोषी विद्यार्थी इसे दंड-स्वरूप करेगा । इसे दंड न कहकर प्रायश्चित्त भी कह सकते हैं, क्योंकि न्यायाधीश उसे अपनी तरफ से सजा नहीं सुनायेगा, बल्कि अपराधी से पूछेगा कि बताओ तुम कौन-सी सजा मांगते हो । अधिकृत सूची में से अपनी मर्जी की एक सजा तुम चुन लो । वही सजा उसे दी जायगी । स्वेच्छा से चुनी हुई होने के कारण उसे प्रायश्चित्त भी कह सकते हैं । इस प्रायश्चित्त से उसके मन पर यह संस्कार पड़ेगा कि किसी दूसरे ने मुझे दंड नहीं दिया है, मैंने स्वयं अपने वास्तविक या न्यायालय द्वारा घोषित अपराध के लिए—अपने मन को जागरूक रखने के लिए, सबक सीखने के लिए, यह प्रायश्चित्त किया है । इसका असर उसके जीवन पर गहरा पड़ेगा—और दंड-स्वरूप श्रम के परिणाम से कोई उपयोगी और उत्पादक काम भी हो जायगा ।

यह प्रथा हर छोटे-बड़े विद्यालय में दाखिल की जा सकती है । न यह कठिन है, न खर्चीली है और न इसमें कोई पेचीदगी है । सीधे-सादा तरीके से आपके बच्चे, आपके विद्यार्थी शांतिप्रिय, प्रेम-सहयोग, भावपूर्ण,

समझौता-वृत्ति के बनते जायेंगे । अब कल्पना कीजिये कि एक तरफ से आपने अपने घर को संभाला, दूसरी तरफ से विद्यालयों को, और इसी तरह संस्थाओं तथा संगठनों को, तो फिर ८-१० साल में ही आप बिल्कुल नई पीढ़ी को शांति के संस्कारों से युक्त पायेंगे और आपके सामने आज जो समाज-विरोधी या विध्वंसक तत्वों का और शक्तियों का प्रश्न मुह बाये खड़ा है, वह आसानी से हल हो जायगा, यह बात समझ में आना मुश्किल नही है ।

यही प्रथा यदि कारखानों, संघों, दफ्तरों, ग्रामों, ग्राम-पंचायतों तथा हमारे छोटे-बड़े सरकारी न्यायालयों मे भी दाखिल कर दी जाय, तो फिर नई पीढ़ी का जो चित्र आपके सामने खड़ा हो सकता है, वह कितना भव्य, सुखद तथा शांतिप्रद होगा ? इससे एक-ही-तो पीढ़ी में आप सर्वोदय को सामने आता देख सकते हैं ।

हमारे खेलों की प्रणाली, नाटक-संगीत-कला-साहित्य की परिपाटी, इन पर भी इसी तरह विचार किया जाकर शांति तथा सद्भावप्रेरक और पूरक नई प्रणालियां सोची और चलाई जा सकती हैं । यदि हमें अपने लोकतंत्र को सफल बनाना है, राष्ट्र निर्माण की योजनाओं को तेजी से आगे बढ़ाना है, आर्थिक विषमता मिटाकर समता की ओर लोक-मानस को झुकाना है, तो इस तरह हमें सोचना ही होगा और नये विचार, संस्कार तथा प्रयोग करने ही होंगे ।

: ३ :

शांति का संस्कार—२

हमने पहले कहा है कि परिवार या संस्था में शांति बनाये रखने के लिए भी हमें इसी प्रकार के उपाय ढूंढने होंगे । थोड़ी गहराई से सोचा जाय तो यह बात हमारी दृष्टि में आ ही जाती है कि परिवार या संस्था ही नहीं, गांव या समाज के झगड़ों का मूल कारण भी स्वार्थ या हित-विरोध होता है ।

प्रायः जब किसी बात में किसी एक व्यक्ति, परिवार या संस्था का हित

होता है और जब वह दूसरे व्यक्ति परिवार या संस्था के हित के विरुद्ध बन जाता है, तो संघर्ष या झगड़ा अनिवार्य हो जाता है। यदि पारिवारिक झगड़ों से लेकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों तक के मूल कारणों को खोजने का प्रयत्न किया जाय और उनके ऊपर पड़े हुए अनेकानेक रेशमी आवरणों को हटा दिया जाय,तो हित-विरोध का यह मूल कारण स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में निवारक दल अथवा शांति में विश्वास रखने-वाले लोगों का यह प्रमुख कार्य होगा कि वे इस हित-विरोध को रोकने का प्रयत्न करें। वैसे प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कुछ-न-कुछ हित होते ही हैं और उनका साधन ही उनका लक्ष्य होता है; किंतु वह हित-साधन इस प्रकार हो कि उनका हित दूसरों के हित का साधक एवं अविरोधी हो। यदि हम अपने हितों को अविरोधी बनाने की कला सीख जायं, तो दुनिया से अशांति और हिंसा को हमेशा के लिए निर्वासित कर सकते हैं।

परिवार हमारे ग्राम, समाज या राष्ट्र की इकाई है। अनेक परिवारों से मिलकर ही ग्राम, समाज या राष्ट्र का निर्माण होता है। अतः यदि परि-वारों में शांति की स्थापना की जा सके, तो हमारा बहुत-सा काम सरल-सा हो जाता है। शांति की दिशा में यह एक बुनियादी कदम होगा। परिवार में शांति-स्थापना का काम तुलनात्मक दृष्टि से बड़ा सरल है। परिवार के सारे सदस्य एक तो स्नेह और आत्मीयता के सूत्र में बंधे हुए होते हैं, दूसरे उनके हित भी बहुत अंशों में समान ही होते हैं। परिवार में जो झगड़े पैदा होते हैं, वे प्रायः उसके दो दलों के बीच होते हैं। इन दोनों दलों में से पहला दल उन व्यक्तियों का है जिनके पास अधिकार, सत्ता या शक्ति है अथवा यह कहिये कि जिनके कंधों पर परिवार के भरण-पोषण की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी है। दूसरा दल उन लोगों का है जो इस पहले दल के आश्रित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि पहला दल अधिक सक्षम होता है। अपनी सक्षमता के कारण उससे आश्रित लोगों के हितों की उपेक्षा भी हो जाती है, उन्हें कम देकर अपने लिए ज्यादा रखने की प्रवृत्ति हो जाती है और यहीं से पति-पत्नी, भाई-भाई या पिता-पुत्र के झगड़े प्रारंभ हो जाते हैं। दूसरी ओर

अनेक बार आश्रित लोगों की ओर से भी झगड़े के बीज बो दिये जाते हैं। यदि पत्नी, बच्चे या छोटे भाई-बहन किसी दुर्व्यवहार या दुराचार के शिकार हो जाते हैं, परिवार की प्रतिष्ठा और मर्यादा भंग करने लगते हैं, तो भी झगड़ा हो जाता है। हमारी मान्यता है कि झगड़े का बीज चाहे पहले पक्ष ने बोया है चाहे दूसरे ने, शांति बनाये रखने के साधन पहले पक्ष के पास अधिक होते हैं। अतः उसे अपना संतुलन कायम रखकर न्याय-भावना का परिचय देना चाहिए। इससे लगभग आधे झगड़े समाप्त हो सकते हैं। जिन झगड़ों में पहल आश्रित लोगों की ओर से होती है या यों कहिये कि जिनमें उनका दोष प्रमुख होता है, उन झगड़ों में पहले पक्ष को अधिक सतर्क और सावधान रहना चाहिए, क्योंकि गुण और प्रतिष्ठा-बल चाहे पहले पक्ष के पास हो, परंतु संख्या और संगठन-बल आश्रितों के पास अधिक रहता है। इस जनता-युग में और लोकतांत्रिक प्रणाली में, संख्या और संगठन-बल को कम आंकना उचित न होगा। पहले पक्ष का कर्त्तव्य है कि इस पिछले बल का उचित मार्ग-दर्शन करता हुआ, सहानुभूति और उदारता से उसके प्रश्नों और विवादों को हल करे। ऐसा न करके यदि सारा उत्तरदायित्व एक पक्ष पर ही डाल दिया जाय और परिवार के छोटे या आश्रित व्यक्ति अपने को उत्तरदायित्वहीन समझने लगें, तो वह भी शांति का एकांगी प्रयत्न होगा और उसकी सफलता भी संदिग्ध ही बनी रहेगी। बहु-संख्यक लोग तो दूसरे दल के ही हैं। अतः जबतक उनमें बड़ों का आदर, श्रद्धा तथा अनुशासन की भावना नहीं होगी, शांति की बुनियाद मजबूत नहीं होगी। यदि किसी बात में बड़ों से उनका मतभेद हो, तो उसे प्रकट करने का अधिकार उन्हें अवश्य होना चाहिए। लेकिन शालीनता विनम्रता और अनुशासन की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। बात यह है कि पारिवारिक शांति से हमारा मतलब स्मशान की शांति से नहीं है। जहां २-४ या ५-७ व्यक्ति रहते हैं, वहां मत, रुचि और स्वभाव का वैचिञ्य होगा ही, किंतु स्वपीड़न, त्याग और उदारता ऐसी जीवित शांति का मार्ग प्रशस्त करेंगे जो सबके लिए कल्याणकारी होगी। इसीलिए तो शांति-सेवा-दल का

आंदोलन अहिंसक समाज के निर्माण का आंदोलन है, जीवन के नवीन मूल्यों की स्थापना का आंदोलन है। वह व्यक्ति, परिवार, संस्था या ग्राम को इतना शक्तिशाली, इतना पवित्र और इतना उज्वल बना देना चाहता है कि उनके आधार पर विश्व-शांति का महल बड़ी सरलता से बनाया जा सके।

संस्था परिवार का ही बड़ा रूप है। वहां या तो सत्ता और अधिकार पाने के लिए कार्यकर्ताओं के दो दल बन जाते हैं, या परिवार की ही भांति सत्ता एवं आश्रित लोगों के दो दल बन जाते हैं, पारिवारिक बंधन रक्त का होता है। रक्त की एकता वहां सबको एक बनाये रहती है, किंतु संस्था का संगठन उद्देश्य की एकता के आधार पर होता है। परिवार में व्यक्ति की प्रधानता होती है, संस्था में उद्देश्य या आदर्श की। अतः यदि स्वार्थ, अधिकार या सत्ता पर दृष्टि न रखकर आदर्श पर ही दृष्टि रखी जाय, उसीको प्रमुख स्थान दिया जाय, तो संस्था के बहुत-से झगड़ों का अंत किया जा सकता है। फिर भी मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं के कारण कोई झगड़ा खड़ा हो ही जाय, तो उसको आत्म-निरीक्षण, स्वपीड़न और परस्पर समझाव के द्वारा अच्छी तरह शांत किया जा सकता है।

हमारी दृष्टि में सत्ता का केंद्रीकरण संस्था के विकास के लिए तो घातक है ही, शांति और सद्भावना के लिए भी घातक है। जब संस्था में आदर्श का स्थान सर्वोपरि मान लिया जाता है, तो सत्ता या अधिकार का स्थान गौण हो जाता है। यद्यपि सत्ता और अधिकार के बिना संस्था का संगठन कठिन हो जाता है और कुछ सीमाओं में ही सही, उसकी आवश्यकता अवश्य रहती है तो भी ऐसी स्थिति बनाई जा सकती है जिससे सत्ता का स्थान प्रमुख न बनने पाये। इसका एक सरल और सूक्ष्म उपाय है विकेंद्रीकरण। जिन लोगों के पास सत्ता है, उन्हें अपने साथी कार्यकर्ताओं को बहुत-से अधिकार बांट देना चाहिए। इससे जहां अशांति या झगड़े का मूल कारण ही नष्ट होने लगेगा, वहां कार्यकर्ताओं की क्षमता और उत्तरदायित्व की भावना भी बढ़गी। गांधीजी के विचार में विश्वास रखनेवाले लोग जिस प्रकार शासन-सत्ता में विकेंद्रीकरण को नये समाज के निर्माण के लिए आवश्यक

समझते हैं, उसी प्रकार अब संस्थाओं में इस विकेंद्रीकरण को मूर्तरूप देकर शांति का मार्ग प्रशस्त बनाना चाहिए। अधिकार पाकर छोटे-से-छोटा कार्यकर्ता भी न तो निर्जीव यंत्र की तरह काम कर सकता है, न काम की पवित्रता और उच्चता के प्रति ही उदासीन रह सकता है। फिर तो काम के साथ उसका अपनापन जुड़ जायगा, आदर्शों की अनुभूति भी उसे सदैव होती रहेगी, पारस्परिक झगड़े की तो जैसे जड़ ही कट जायगी।

हो सकता है कि सत्ता के इस विकेंद्रीकरण का कभी-कभी दुरुपयोग भी हो और छोटे कार्यकर्ता उसके द्वारा संस्था के आदर्श और अस्तित्व पर ही आघात करना प्रारंभ कर दें। अतः इसमें सावधानी रखने की आवश्यकता तो है; किंतु हमारा विश्वास है कि विकेंद्रीकरण के बाद इस प्रकार के अवसर कम आयेंगे। वे जब भी उपस्थित हों, परिवार की ही भांति आत्म-प्रेरणा जाग्रत करके उन्हें मिटाना सर्वोत्तम होगा और उसका मार्ग है स्वपीड़न। यह स्वपीड़न व्यक्ति व संस्था दोनों में तेजस्विता पैदा करेगा। इसकी आग में तपने से स्वयं व्यक्ति भी निखरे बिना न रहेगा। वह दुधारी तलवार की भांति अपने और विपक्षी दोनों के ही कल्मशों पर समान रूप से चोट करेगा, दोनों की तेजस्विता बढ़ायेगा।

शांति-स्थापना की दृष्टि से परिवार का बड़ा महत्व है। अतः विकेंद्रीकरण के साथ ही पंच-फैसले जैसे माध्यम का भी प्रवेश करना उचित होगा। इससे पारिवारिक बंटवारे के झगड़ों में अदालतबाजी और दूसरे शांति-भंग के अवसर कम हो जायेंगे।

ग्रामों में जगह-जगह ग्राम-पंचायतें कायम हो रही हैं। ग्राम-न्यायालय भी बन रहे हैं। उनमें वही पद्धति डाली जाय जो विद्यालय के सिलसिले में बताई गई है। शांति-स्थापना के लिए जो निवारक दल बने, वह देखेगा कि प्रत्येक परिवार और गांव में भीतरी तथा बाहरी शांति का वातावरण रहे।

: ४ :

शांति-संगठन—१

शांति के विचार और संस्कार के बाद अब हम शांति-संगठन पर आते हैं। वैसे हर देश की सरकार की यह जिम्मेदारी होती है कि वह देश में शांति-रक्षा करे, देश की व्यवस्था बनाये रखे, परंतु आज की सब सरकारें अंत में दंड या शस्त्र-बल से शांति-रक्षा करती हैं। जो व्यक्ति समाज के अपराध में कानून द्वारा दंडित होता है, उसे जुरमाना देना या जेल में जाना पड़ता है, जो उपद्रव और हिंसा-कांड करते हैं, उनपर अंततोगत्वा डंडे और गोली की बौछार की जाती है। कोई भी सरकार यह नहीं चाहती कि उसे ऐसे अप्रिय कार्य करने पड़ें। मजबूरी की हालत में ही सरकार या सरकार के जिम्मेदार अधिकारी इन हिंसात्मक साधनों का आश्रय लेते हैं। वे सब शांति चाहते हैं, शांति के साधनों से काम चल जाय तो उन्हें खुशी होगी, परंतु एक तो शांति के साधन उन्हें सूझते या मिलते नहीं, दूसरे सूझते और मिलते भी हों, तो उन्हें वे अव्यावहारिक, हवाई, आदर्श-जैसे लगते हैं। उनके तुरंत और तत्काल प्रभाव डालने की शक्ति पर उनका विश्वास नहीं होता। इन कारणों से वे दंड और शस्त्र का आश्रय सहसा नहीं छोड़ सकते। हमारा काम है कि हम ऐसा वातावरण निर्माण करें, ऐसी भावनाओं को फैलायें, ऐसी प्रणालियों को सुझायें, ऐसे प्रयोग करें, जिससे उनकी कठिनाई दूर हो, उनका मार्ग सरल हो और उनका उत्साह बढ़े। यह बिना शांति-संगठन के नहीं हो सकता। सरकारी तौर पर यदि ऐसा शांति-संगठन किया जाय, तो आज उसका फल अनुकूल निकलने में संदेह है। सरकार पर अभी जन साधारण की ऐसी श्रद्धा नहीं हो गई है कि वह उसे बिल्कुल अपना व्यवस्था-मंडल मान ले। आज की सरकार व्यवहार में बिल्कुल कल्याणकारिणी बन भी नहीं गई है। उसके महान नेताओं की यह इच्छा और प्रयत्न अवश्य है कि वह कल्याणकारिणी या मंगलमय बन जाय, परंतु अभी तक जनता

ग्रौर उनके प्रतिनिधि भी उसे अ्रपने से भिन्न ही मानते हैं ग्रौर उसके तथा उसके अ्रफसरों ग्रौर कर्मचारियों के कामों को शंका ग्रौर ग्रालोचना की दृष्टि से देखते हैं, ग्रात्मीयता ग्रौर ममत्व की दृष्टि से नहीं। ग्राज यदि सरकार कोई शांति-मंडल स्थापित करे या शांति-दल खड़ा करे, तो फौरन लोग उसे एक सरकारी महकमा मान लेंगे, ग्रौर उसके प्रति उनके मन में खास ग्रादर या सद्भाव नहीं होगा। परंतु यदि कोई ग़ैर-सरकारी संस्था, संगठन या दल इसके लिए बनता है, तो लोगों की दृष्टि बदल जाती है। वे उसे अ्रपनी चीज मानते हैं। अ्रतः ग्राज हम सिद्धांततः भले ही मानें कि शांति-व्यवस्था सरकार की जिम्मेदारी है, ग्रौर सरकार को ही शांति-दल बनाना चाहिए, परंतु ग्राज वह उतना प्रभावकारी ग्रौर शक्तिशाली न बन सकेगा, जितना ग़ैर-सरकारी संगठन या दल। फिर ग्रागे जाकर सर्वोदय की दृष्टि से हमें यदि शासन ग्रौर शोषण का ग्रंत करना है, सरकार जैसी कोई चीज ही नहीं रखना है, केवल व्यवस्था-मंडल रह सकेगा, तो फिर ग्राज ही से ग़ैर-सरकारी संगठन या दल क्यों न खड़ा किया जाय? इससे दो लाभ होंगे--एक तो यह कि सरकारी महकमे जैसा न रहने से लोगों के ग्रादर ग्रौर ममत्व का पात्र बनेगा, दूसरे यदि वह प्रभावकारी हो सका--उसके द्वारा शांति का वातावरण बन पाया, उसके निवारक ग्रौर रक्षक दोनों दलों ने समय-समय पर प्रत्यक्ष शांति-स्थापना द्वारा अ्रपनी उपयोगिता सिद्ध की तो, सरकार के लिए भी, जबतक वह कायम रहेगी, शस्त्र-दल की जगह इस शांति-दल को प्रतिष्ठित या ग्रंगीकृत करना ग्रासान हो जायगा। इस बीच यदि सरकार-संस्था ही न रही, तो यह शांति-दल एक सर्वोदय का व्यवस्था-मंडल बन सकेगा, या ऐसे मंडल बनाने में उपयोगी ग्रौर सहायक हो सकेगा।

अ्रतः हमारी राय में फिलहाल ग़ैर-सरकारी तौर पर इसका संगठन होना उचित होगा। अ्रलबत्ता सरकार की दृष्टि इसके प्रति ममत्व की, सहानुभूति की ग्रौर सहयोग की होनी चाहिए; क्योंकि ग्रंततोगत्वा तो यह उसीकी सहायता का काम है। उसीके कर्त्तव्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंग है ग्रौर जिस तरह भारत सेवक समाज, खादी-मंडल, हरिजन सेवक संघ,

आदि को सरकार का अपनत्व मिल रहा है, वैसा ही इसे मिलना चाहिए। ऐसे शांति-संगठन या शांति-दल के लिए सरकार और सरकार के महकमे आज क्या-क्या कर सकते हैं—इसका विचार स्वतंत्र रूप से आगे करेंगे। यहां तो हम यह बताना चाहते हैं कि शांति-संगठन कैसे किया जाय।

मेरी समझ से उसका नाम 'शांति-स्थापक-मंडल' रहे। उसका उद्देश्य हो—भारत में तथा विश्व में शांतिमय स्थिति पैदा करना, जिससे समाज तथा सरकार को शांति-रक्षा के लिए शस्त्र या दंड-बल का आश्रय न लेना पड़े।

इसके लिए वह तीन प्रकार के काम करेगा:

(१) शांति के विचारों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन और प्रसार।

(२) शांति के संस्कारों के आयोजन, शांतिमय जीवन के अनुकूल प्रणालियों, विधि-विधानों का सर्जन और प्रयोग।

(३) शांति-रक्षा के लिए प्रत्यक्ष शांति-दल की स्थापना।

पहले दो के बारे में हम पहले थोड़ा विचार कर चुके हैं। इस अध्याय में हम तीसरे—शांति-दल के बारे में विचार करेंगे।

शांति-दल के दो विभाग होंगे। एक निवारक, दूसरा रक्षक। निवारक-दल प्रयत्न करेगा कि गांव-कसबे तथा समाज में झगड़ा-फिसाद न होने पाये और होने की आशंका या संभावना का पता लगते ही फौरन निवारक उपाय काम में लाकर उसकी रोक-थाम करने का प्रयत्न करे।

यदि निवारक-दल झगड़े-फसाद को रोकने में असमर्थ हुआ, या असफल रहा, तो रक्षक-दल वहां पहुंचेगा और परिस्थिति को अपने हाथ में लेगा।

निवारक दल शांति के विचारों और शांति के संस्कारों संबंधी कार्यक्रमों के साथ पहला काम गांवों में अग्रलिखित प्रतिज्ञा-पत्रों पर नागरिकों के हस्ताक्षर प्राप्त करने का कार्य करेगा।

प्रतिज्ञा-पत्र

मंख्या..... ता०........

श्री अध्यक्ष महोदय,

शांति-रक्षक-दल

....

प्रिय महोदय,

वंदे। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने निजी, स्थान, मंस्था अथवा समाज और देश-संबंधी झगड़ों को आपस में, पंच-फैसले से या अदालत के जरिये वैधानिक तरीके से तय कराऊंगा; किसी भी दशा में उनके लिए मारकाट या हिंसा-उपद्रव का आश्रय नहीं लूंगा।

भवदीय,

पता............... (हस्ताक्षर)..............

....

....

इससे पहले निवारक और रक्षक दोनों दलों के स्वयंसेवक या सैनिक नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे।

प्रतिज्ञा-पत्र

मंख्या........ ता०..........

श्री अध्यक्ष महोदय,

शांति-रक्षक-दल

....

प्रिय महोदय,

वंदे। मैं.....................शांति-रक्षक-दल का सदस्य हूं। मैं मानता हूं कि समाज तथा देश की उन्नति और विकास के लिए सर्वत्र शांति और अभय का वातावरण रहना नितांत अनिवार्य है। इस मान्यता की पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा करता हूं कि जब कभी लड़ाई-झगड़े तथा हिंसात्मक उपद्रवों को रोकने का अवसर आयेगा, मैं शांतिमय साधन से उन्हें शमन

करने का प्रयत्न करूंगा और आवश्यकता हुई तो उसके लिए अपने प्राणों की आहुति देने के लिए भी तैयार रहूंगा।

भवदीय,

(हस्ताक्षर)..................

पता.......................

....

नागरिकों के प्रतिज्ञा-पत्र भरे जाने से दो लाभ होंगे—(१) एक तो वे स्वयं शांति-भंग का अवसर न लायेंगे—(२) यदि दूसरे शांति-भंग करना चाहते हों, तो उन्हें भी अपने-आप स्वप्रेरणा से रोकने का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि स्वयं शांति के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं। उससे निवारक-दल का आधे से ज्यादा काम हो जायगा।

फिर निवारक-दल अपने कार्यक्षेत्र के, जो मेरी राय में २५ मील घेरे से अधिक आमतौर पर न होना चाहिए, संपर्क में रहेगा और ऐसी व्यवस्था करेगा कि अपने क्षेत्र में लड़ाई-झगड़े या फिसाद की संभावना होते ही उसे खबर मिल जाय और वह समय पर पहुंचकर उसमें ध्यान दे सके तथा शांति-भंग की अवस्था को बिगड़ने से रोक सके। इसमें सरकारी तथा गैर-सरकारी सभी एजेंसियों का सहयोग उसे मिलना चाहिए।

इस दल में दूसरी श्रेणी के कार्यकर्ता होंगे—जिनकी तैयारी प्राण देने की होगी, पर जिन्हें सहसा प्राण देने की नौबत नहीं आयेगी। इसे आप प्रारंभिक दल भी कह सकते हैं। बुनियादी और रचनात्मक होने से इस दल के काम का बहुत अधिक महत्व है। यह काम समाज के मानस, स्वभाव, संस्कारों-प्रणालियों को बदलेगा, जिसका प्रभाव जीवन-व्यापी होगा। इस काम के बिना शांति-दल का आगे का—रक्षक रूप का—काम किसी हालत में नहीं चल सकता।

लेकिन इस दल से शांति-स्थापना का भाव पूर्ण नहीं हो सकता। इससे तात्कालिक उपद्रवों और हिंसा-कांडों का शमन नहीं हो सकता। अतः तबतक इस रक्षक-दल की आवश्यकता रहेगी जबतक समाज स्वतः

ही शांति-पथ पर न चलने लग जाय—कहीं कोई शांति-भंग की आशंका या संभावना ही न रह जाय। इसमें कितना काल लगेगा—यह आज कहना कठिन है। परंतु हमें तो आज की समस्या का हल ढूंढना है। अतः हमें इस रक्षक-दल का निर्माण करना ही होगा।

: ५ :

शांति-संगठन—२

शांति-रक्षक-दल

रक्षक-दल में ऊंचे दरजे के, पहले नंबर के प्रतिष्ठित, प्रसिद्ध, सच्चे, समाज-सेवी, राष्ट्र-नेता, त्यागी, साधना-शील, संयमी व्यक्ति होने चाहिए जिन्हें हृदय से शांति प्रिय हो; शांति, सद्भावना, सहयोग, मानवता के लिए स्वपीड़न और स्वमरण के अवसर आयें तो उससे जिन्हें प्रसन्नता और उत्साह का अनुभव हो। भले ही ये थोड़े हों—परंतु उन्हें समाज का काफी अनुभव होना चाहिए, जिनके नाम तथा उपस्थिति-मात्र से जनता पर प्रभाव हो, जिनका जीवन जनता में आत्मसात हो गया हो। मेरा खयाल तो यह है कि यदि भारत में एक भी ऐसा दल बन जाय, जिसमें भले ही पांच उच्च कोटि के व्यक्ति हों, तो उसकी स्थापना, घोषणा या अस्तित्व-मात्र से शांति-रक्षा की दिशा में बड़ा प्रभाव पड़ेगा। एक ओर से भारत में और भिन्न-भिन्न राज्यों में ऐसा रक्षक-दल बन जाता है तो इससे जो शांति का वातावरण निर्माण होगा, उससे दंगों-उपद्रवों पर, ऐसी मनोवृत्ति पर, ऐसे तत्वों पर बड़ा संयमकारी-नियंत्रणकारी प्रभाव पड़ेगा। रक्षक-दल दंगों-फिसादों और उपद्रवों के अवसर पर जाकर काम करेगा। वह किस तरह करे, इसकी कल्पना इस प्रकार है :

खबर लगी कि फलां जगह दंगा-फिसाद होने जा रहा है, या हो रहा है। तुरंत उस मौके पर यह खबर फैलनी चाहिए कि रक्षक-दल के लोग आ

रहे हैं। वे जरूरत हुई तो जान की बाजी लगाकर भी लोगों को फिसाद और हिंसा-कांड से रोकेंगे। स्वभावतः दंगे की जगह एकत्र लोगों में एक हलचल मचेगी—वे भी दंगे को न बढ़ने देने का उपाय करेंगे। अब दल के लोग आ पहुंचे—उनके आने का शांति के अनुकूल कुछ प्रभाव जरूर पड़ेगा। जो दंगे राजनैतिक या सांप्रदायिक उन्माद के कारण हुए हैं या होंगे, जो जान-बूझकर खड़े किये गए हैं, या बढ़ाये गए हैं, उन पर इनके आने का कम असर भी हो सकता है। यह भी संभव है कि उपद्रवी लोग और भी उत्तेजित होकर इन शांति के नेताओं पर हमला कर दें और उनकी जान चली जाय। इस प्रकार के उपद्रवों और हिंसा-कांडों का हम अलग से विचार करेंगे। यहां तो हम रक्षक-दल के कार्यक्रम या प्रक्रिया की कल्पना देना चाहते हैं।

अच्छा तो रक्षक-दल ने पहुंचकर उनसे कुछ बातचीत प्रारंभ की और आगे जो प्रसंगोचित व्यवहार उन्हें सूझेगा, जैसा उनका प्रसंगावधान होगा, वैसे वे उस परिस्थिति पर काबू पाने का प्रयत्न करेंगे। पहले से उसका नियम-विधान बता रखना न संभव है, न व्यवहार्य है। दल के नेता के सामने इस समय दो मार्ग उपस्थित होते हैं—एक तो यह कि प्रत्यक्ष मोर्चे पर पहुंचकर उपद्रव को शमन किया जाय, दूसरे उस स्थल से दूर रह-कर उस पर नियंत्रणकारी प्रभाव डाला जाय। दल के नेता परिस्थिति को देखकर उसका निर्णय करेंगे। यदि उन्हें यह प्रतीत हुआ कि प्रत्यक्ष मोर्चे पर शांतिमय मुक़ाबला करने से, उसकी प्रतिक्रिया में, कम-से-कम तुरंत अधिक उपद्रव बढ़ने की संभावना है, तो वह उससे दूर रहकर उसको रोकने का उपाय करे। यह उपाय अनशन के द्वारा किया जा सकता है। वह यह घोषणा करायें कि जबतक यह दंगा शांत न होगा, हम एक, दो, तीन जितने भी हों, अनशन करेंगे। दंगा शांत होने पर ही अन्न ग्रहण करेंगे। भले ही इसमें उनके प्राण चले जायें। इसका असर जरूर होगा—वे सब शक्तियां और तत्व, जो शांतिप्रिय हैं, और जिनके मन में उन रक्षक-दल के नेताओं या सैनिकों के प्रति आदरभाव और स्नेह तथा महत्व है, शांति की दिशा में काम करने के लिए खड़े हो जायेंगे।

ऐसे दंगे अंत में तो शांत होते ही हैं—खानगी या गैर-सरकारी प्रयत्नों के बावजूद, पुलिस-दल रहना ही है, और रहेगा ही, अंततोगत्वा वह उसे अपनी लाठी-गोली से शांत कर ही देगा, परंतु यह अनशन उस दंगे की प्रगति, वेग और बल को रोकने व कम करने में जरूर मदद देगा। और यदि तात्कालिक प्रभाव कम हुआ, या न भी हुआ, तो बाद में उसका शांतिकारी असर जरूर होगा। आगे के दंगों का मार्ग उससे काफी कठिन हो जायगा।

अब आप यह कहेंगे कि प्रत्यक्ष मोर्चे पर जाकर हमारे बड़े बहुमूल्य नेता मारे गए या अनशन करके मर गए तो क्या होगा? बावले, पागल, उन्मत्त मदांध लोगों के बीच इन नेताओं का जाकर अपनी जान झोंकना बेवकूफी होगी। मैं इससे सहमत नहीं। मैं समझता हूं कि इस समय अनशन करके स्वपीड़न द्वारा या प्रत्यक्ष मोर्चे पर बलिदान द्वारा हम जो सेवा करेंगे वह अनमोल होगी। उसका गहरा व स्थायी असर होगा। तुरंत ही होगा, तुरंत नहीं तो कुछ ठहरकर अवश्य होगा। बल्कि जहां ऐसे बड़े नेता मारे जायंगे वहां कोई ताज्जुब नहीं, आगे कई वर्षों के लिए बड़े दंगे-फिसाद ही बंद हो जायें या रुक जायें। उनकी आहुति से लोगों के मन और हृदय बदल जायेंगे और वे अवश्य शांति की तरफ झुकेंगे। नेता तो बलिदान देकर अमर हो ही जायेंगे, पर उस क्षेत्र में भी शांति के अमिट बीज बो जायेंगे। और हमें बड़े तथा प्यारे नेताओं के ऐसे बलिदान के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। बेशक पहले हम मरेंगे—बाद में उनको मरने देंगे। लेकिन उनकी मोर्चे पर जाकर मरने की तैयारी हम तिनकों में भी हाथी का बल ला देगी—हम जैसे सैकड़ों को अपनी जान देकर उपद्रवों को शमन करने अपने तथा प्यारे नेताओं की जान बचाने की अमिट प्रेरणा देगी। यह उस बलिदान का ऐसा-वैसा असर नहीं माना जा सकता। शस्त्र-युद्ध में जब हमारे बड़े जनरल और कमांडर मारे जाते हैं, और हम उनके मर जाने में गौरव अनुभव करते हैं तो उससे अधिक ही प्रेरणा व प्रभाव इन शांतिप्रिय बलिदानों का होगा। जो हिंसा-कांड और उनसे संबंधित जघन्य घटनाएं देश में होती रहती हैं, उन्हें रोकने के लिए हम जैसे

सैकड़ों का और कुछ बड़े नेताओं का बलिदान कोई बड़ी चीज नहीं समझा जाना चाहिए। उससे भयभीत या चिंतित होने का कोई प्रश्न ही नहीं है—वह दिन हमारे लिए एक स्मरणीय तथा प्रेरणादायी और स्फूर्तिदायी दिन होना चाहिए।

दंगा पुलिस-बल से शांत हुआ हो या अहिंसा-बल से, उसके अंत के बाद इस दल को, जिसमें अब निवारक-दल भी शामिल हो सकता है, फिर शांति के विचार और शांति की भावना का प्रचार करना चाहिए। शांति के प्रतिज्ञा-पत्रों पर दस्तखत कर भिजावायें तथा और प्रकार भी काम लायें। दंगे में जिन-जिनकी जान-माल की हानि हुई हो, उसकी जिम्मेदारी दंगाइयों पर डाली जाय, उसके परिमार्जन और मुआवजे का प्रबंध किया जाय। इस तरह दंगाइयों से गैर-सरकारी तौर पर प्रायश्चित्त कराया जाय।

इसमें हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम सरकार से यह नहीं कहते कि वह आज ही पुलिस-बल को हटा दे, और अकेला शांति-दल ही काम करे। अंत में तो हम पुलिस-बल का स्थान इसी शांति-दल को देना चाहते हैं। चाहे सरकारी, चाहे गैर-सरकारी तौर पर—पांच साल में इस शांति-दल को इतना सुसंगठित, मुस्तैद, कार्यकारी हो जाना चाहिए कि जिससे सरकार को वर्तमान सशस्त्र-पुलिस-बल की आवश्यकता ही न रहे; परतु जबतक समाज में ऐसा शांतिमय वातावरण नहीं बना लिया जाता, या शांति-दल प्रभावकारी और कार्यकारी नहीं हो पाता, तब तक हम पुलिस-बल को हटाने की सलाह न देंगे; अलबत्ता सरकारी पुलिस-बल के साथ एक सरकारी निवारक शांति-दल जोड़ा जा सके तो विचार करने योग्य जरूर है।

: ६ :

युद्ध-निवारण

अबतक तो हमने देश की भीतरी शांति-रक्षा की दृष्टि से मुख्यतः विचार किया। यह मान भी लें कि प्रत्येक देश ने भीतरी शांति-व्यवस्था

इस तरह करली कि उसे उसके लिए शस्त्र-बल की आवश्यकता नहीं रही, तो भी अंतर्राष्ट्रीय क्षत्र में युद्धों का प्रश्न बना ही रहता है। उसे कैसे हल किया जाय ?

यदि सब देश भीतरी व्यवस्था में हिंसा-बल से मुक्त हो जाते हैं, तो उसका बहुत बड़ा नियंत्रणकारी और संयमकारी प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय युद्ध-समस्या पर पड़ेगा। आज भी पंचशील के प्रचार के कारण शांति के अनुकूल वातावरण तो सभी देशों में पैदा हो रहा है; परंतु अभी उसकी गति भाषण, लेख, प्रस्ताव-वक्तव्य, ठहराव से आगे नहीं बढ़ी है। यह प्रारंभिक और बुनियादी काम अवश्य हुआ है, उसकी आवश्यकता थी और अब भी है, परंतु हमने देख ही लिया है कि मिस्र और हंगरी के मामले में एक ही झटके में हमारी कई साल की खड़ी की गई इमारत ढहने लगी थी। अतएव हमें इस दिशा में कोई प्रत्यक्ष काम करके, संगठन करके पंचशील के काम को मजबूती देनी चाहिए। इसका एक ही उपाय है—शांति-सेना ! स्वेज-नहर के मिस्री प्रश्न पर ही हमने अनुभव कर लिया कि अंतर्राष्ट्रीय पुलिस-बल का अधिक महत्व है। राष्ट्रीय सैन्य को अपने-अपने राष्ट्र या देश का सहयोग और विश्वास अर्थात नैतिक बल प्राप्त होता है—जबकि अंतर्राष्ट्रीय पुलिस-बल को सभी राष्ट्रों का। वह सभी राष्ट्रों की अर्थात विश्व की अपनी चीज हुई। अर्थात हम व्यापक सहानुभूति—व्यापक ममत्व की दिशा में आगे बढ़े। हम विश्व या मानव-भावनाओं में प्रगति पथ पर चलने लगे। यह हमारे विकास का आगे का कदम है। परंतु यह पुलिस-बल भी शस्त्र-बल पर आधारित रहा। इसे हम शांति-दल में परिणत करने की दृष्टि से विचार करें, क्योंकि आज एकवारगी कोई निःशस्त्र शांति-सेना राष्ट्रीय स्तर पर बनाना भी मुश्किल होगा। तो क्या यह अंतर्राष्ट्रीय पुलिस-बल निःशस्त्र बनाया जा सकता है ?

गहराई से विचार करेंगे तो इस पुलिस-दल के पीछे शस्त्र का उतना बल नहीं है, जितना राष्ट्रों की परस्पर सद्भावना, अर्थात शांति-प्रियता का नैतिक बल है, क्योंकि भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की सेना को लड़ने न देने—शस्त्र

चलाने से रोकने के लिए इस दल का प्रादुर्भाव हुआ है । इसका काम जितना रक्षक है, उतना मारक नहीं । नाम को ही, भाक को ही शस्त्र उसके हाथ में है, ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी । अब यदि उसमे शस्त्र हटा लिये जाते हैं, तो क्या नुकसान होगा ? वैसे भी उसके हाथ में मामूली शस्त्र रहते हुए भी, यदि संबंधित राष्ट्रों की सरकार न माने या सशस्त्र-सेना से चढ़ाई कर दे, तो यह मुट्ठी-भर पुलिस-बल क्या कर लेगा ? अत: इसके पीछे जो सबका नैतिक बल है वही प्रधान है, शस्त्र-बल बिल्कुल ही नाम का है । इस नैतिक बल को अधिक बढ़ाकर, यदि हम यह निश्चय करें कि एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय सैन्य खड़ा किया जाय या इसी पुलिस-बल को नि:शस्त्र बना दिया जाय जो युद्ध में लीन या लिप्त या उसकी तैयारी में लगे हुए राष्ट्र या राष्ट्रों को चुनौती दे कि यदि उन्होंने कहीं आक्रमण किया त। उन्हें पहले इस शांति या नि:शस्त्र दल का मुकाबला करना पड़ेगा, अर्थात उस नि:शस्त्र दल या सेना को कत्ल करके या मार के ही वह आगे बढ़ सकेगा । यदि सामने एक सशस्त्र सैन्य है तो दूसरे सशस्त्र सैन्य के लिए उसका मुकाबला आसान है । आज उसे कोई बुरा न कहेगा, भले ही मन में वह अच्छा न लगे, पर आज के नियम, कानून, विधान के अनुसार वह जायज माना जायगा । परंतु यदि कोई नि:शस्त्र दल या सेना सामने है, तो सशस्त्र सैन्य के अधिकारियों को एक बार सोचना तो पड़ेगा । यह सोचने लगना ही उनकी मानसिक हार का सबूत है । नि:शस्त्र पर शस्त्र कैसे चलायें—चलायें या नहीं—यह प्रश्न, यह हिचक ही उनकी राष्ट्रीयता के ऊपर मानवता, शस्त्र-बल पर नैतिक बल की महत्ता की घोषणा करती है । यह हिचक, यह मानवता या नैतिकता का प्रभाव उन्हें शस्त्र चलाने के बजाय, प्रस्तुत प्रश्न का निपटारा दूसरे शांतिमय नि:शस्त्र तरीके से करने की ओर प्रेरित करेगा । इसमें से समझौते का कोई मध्यम मार्ग निकल आयेगा । यह शांति या नि:शस्त्र सेना की विजय हुई—महज उसके अस्तित्व मात्र से, या मरने की तैयारी मात्र से ।

अब आप कहेंगे—यह क्यों मान लें कि वह सशस्त्र-सेना हिचकेगी । उसका काम तो नि:शस्त्र सेना के मुकाबले में बड़ा आसान हो जायगा ।

एक ही झटके में, एक ही हमले में, उस सेना का काम तमाम करके वह सेना अपना लक्ष्य सिद्ध कर लेगी। जो शस्त्र लेकर विजय के लिए चलता है वह क्यों इतना नैतिकता का, मानवता का विचार करने लगा? यही असली प्रश्न है, असली दिक्कत है, जिसको हल किये बिना हमको इसमें आगे बढ़ना कठिन है।

इसमें हमारा निवेदन यह है कि अब पहले की तरह सशस्त्र-सेना और सशस्त्र-सेना के अधिपति या संचालक, या शासक महज पशुबल या शस्त्र-बल पर आधार रखनेवाले नहीं रहे। लोक-कल्याण की तथा लोकतंत्र की भावनाएं सभी देशों और राष्ट्रों में प्रबल हो रही हैं। वहां के सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक सभी संगठन इन भावनाओं को महत्व दे रहे हैं और बौद्धिक स्तर पर सभी लोग हिंसा के मुकाबले में अहिंसा की श्रेष्ठता को मान गए हैं। अब यह तर्क या बौद्धिक विवाद का विषय नहीं रहा—व्यवहार्य—या अव्यवहार्य—सरल या मुश्किल की श्रेणी में आ गया है। अतः यदि कहीं ऐसे निःशस्त्र दल या सेना का प्रयोग किया जाता है, कहीं कोई ऐसा दल खड़ा करता है, तो जगत के नेता आज उसका स्वागत ही करेंगे, उसे सहयोग तथा बल देने की ही इच्छा रखेंगे। यदि हमारा विश्व के या अंतर्राष्ट्रीय जगत के मानस का यह अवलोकन सही है, तो फिर पूर्वोक्त शंका, दलील या कठिनाई अपने-आप हल हो जाती है। सिर्फ इतना ही सवाल रह जाता है कि कौन माई का लाल, व्यक्ति या राष्ट्र इसके लिए आगे कदम बढ़ाये?

निश्चय ही इसमें सबसे पहले सबकी निगाह भारत पर ही पड़ेगी। ठेठ वेद और उपनिषद से लेकर नहीं, बुद्ध-महावीर-अशोक की परंपरा से ही नहीं, हाल के गांधी-नेहरू-विनोबा तक का एक ही संदेश सर्वोपरि है—शांतिः-शांतिः-शांतिः। नेहरूजी को उसके पहले का 'ॐ' शब्द शायद अनावश्यक मालूम पड़े, परंतु यदि उनकी समझ में यह बात आ जाय कि ॐ शब्द विश्व की महान-से-महान व्यापक शक्ति का सूचक है, तो वह भी मानेंगे कि ॐ शांतिः-शांतिः-शांतिः' यह मंत्र, यह संदेश भारत को ईश्वरी देन है, और

आज भारत, इसी पूर्व पीठिका, परंपरा, या विरासत को लेकर विश्व में पंच-शील की प्रतिष्ठा करने में सफल हुआ है। अतः आगे के शांति-सैन्य के लिए संसार के राष्ट्र उसीकी ओर आंख लगाये बैठें, तो क्या आश्चर्य है? और कोई बैठे या न बैठे—भारत इसपर विचार क्यों न करे? उसका अपना यह दायित्व है—ऐसा क्यों न समझे? अहंकार के प्रभाव से नहीं, विश्व-कल्याण और विश्व-भावना की वृद्धि तथा सिद्धि की दृष्टि से—सेवा और सुधार के खातिर।

भारत में आज बापू के पुण्य, नेहरू के प्रताप और विनोबा के तप से कम-से-कम आंतरिक शांति की दिशा में तो ऐसा वातावरण बन ही गया है कि शांति को लोग व्यवहार्य कोटि में मानने लगे हैं। यहां कई संगठन, समाज, संस्थाएं ऐसी हैं, कई धर्म-संप्रदाय ऐसे हैं, जो महज शांति के ही लिए पैदा हुए हैं और शांति के ही लिए जीते हैं। हमारे राष्ट्रीय नेता, हमारे शासन-सूत्र-संचालक सब शांति के पुजारी हैं। हमारे विनोबा और अब तो साधु-समाज भी इसके लिए उठ खड़ा हुआ है। जैन-वैष्णव-ईसाई तो पहले से ही शांतिप्रिय हैं—वे इस आयोजन का सबसे पहले स्वागत करेंगे। क्या ही अच्छा हो कि विनोबा तो भारतीय शांति-सेना का और जवाहरलालजी अंतर्राष्ट्रीय या विश्व-शांति-दल का झंडा अपने हाथ में ले सकें और हमारे राष्ट्रपति भारत में और भारत की ओर से ऐसे दल की विधिवत घोषणा का श्रेय और गौरव प्राप्त करें!

मुझे इस नाते दूर भविष्य में ऐसी ही श्रद्धा है, जैसीकि इन महान नेताओं के व्यक्तित्व के प्रति है। मैं जानता हूं कि यह काम महान नेताओं और प्रभावशाली व्यक्तित्व का है। अतएव उनतक अपनी पुकार पहुंचाकर, उनका दरवाजा खटखटाकर, इतनी-ही अपनी शक्ति मानकर आगे बढ़ता हूं। इतना मैं अवश्य जानता और मानता हूं कि ऐसे दल और सेना खड़ी करने का समय आ पहुंचा है।[1]

---

१. इसके बाद पूज्य विनोबा ने शांति-सेना खड़ी करने का जो आयोजन किया है, उससे यह विश्वास पुष्ट ही हुआ है।

: ७ :

सरकार और शांति-दल

उत्तम या आदर्श समाज-व्यवस्था कैसी हो--इसके बारे में अबतक कई प्रणालियां चलीं, नये प्रयोग हुए, नये-नये आदर्श सामने आये। भारतवर्ष में हजारों वर्षों तक वर्णाश्रम प्रणाली चली। अब वह जर्जरित हो रही है। उसमें एक मुखिया के आश्रित घर की, समाज की, राज की व्यवस्था होती थी। शुरू में मुखिया चुना जाता था, बाद में वह स्वाधिकार से, जन्म-सिद्ध अधिकार से मुखिया हो गया, जो राजा कहलाया। वह अक्सर क्षत्रिय होता था, ब्राह्मण उसके मंत्री होते थे। राजा शासन भी करता था और रक्षण भी। भीतरी शांति की और बाहरी आक्रमणों से राज्य, समाज या देश की रक्षा करने की उसकी जिम्मेदारी थी। वह सेना और शस्त्रास्त्र द्वारा रक्षा करता था। अब एक राजा की जगह हमने प्रजा का राज स्थापित किया। अब समाज-व्यवस्था और रक्षा की सारी जिम्मेदारी प्रजा अर्थात जनता पर आ गई। अब भी मुखिया होता है, परंतु वह प्रजा का चुना हुआ होता है। अब भी सेनाएं हैं। प्रधान मंत्री अपने मंत्रिमंडल में एक प्रतिरक्षा मंत्री रखता है और एक गृह मंत्री रखता है। प्रतिरक्षा मंत्री सैन्य के द्वारा देश की रक्षा करता है बाहरी आक्रमणों से; गृह मंत्री भीतरी शांति की रक्षा करता है पुलिस-बल से; आवश्यकता पड़ने पर वह सैन्य-बल की भी मदद लेता है।

भारत में हमने व्यक्ति-सत्ता-प्रधान व्यवस्था का अंत करके समाज-सत्ता-प्रधान व्यवस्था कायम करने की घोषणा की है। अर्थात हम चाहते हैं कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति और विकास का समान अवसर और समान अधिकार मिले। इसी तरह हमने लोकतंत्र को स्वीकार करके चाहा है कि समाज की व्यवस्था प्रजा की सम्मति से चले। ये दो बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इससे हमें सारी समाज-व्यवस्था ही बदलनी होगी। व्यक्ति-आश्रित जितनी प्रणालियां थीं, वे सब हमें समाज-

आश्रित बनानी होंगी। व्यक्ति की सत्ता या मुखिया की मर्जी से जो काम चलते थे, वे अब सामूहिक सत्ता और जनता की मर्जी से चलाने होंगे। हमारे सामाजिक रस्म-रिवाज, जाति-पांति की प्रणाली, अर्थ-व्यवस्था, श्रम-व्यवस्था, शासन-पद्धति, सबमें आमूल परिवर्तन करना होगा। समाज-सत्ता-प्रधान आदर्श होने से हमें व्यवस्था में विकेंद्रीकरण लाना होगा। प्रजा की सम्मति अनिवार्य होने से, प्रजा-प्रतिनिधियों का चुनाव करना होगा—चुनाव-प्रणाली डालनी होगी। विकेंद्रीकरण का अर्थ हुआ जो अधिकार या सत्ता एक व्यक्ति में निहित थी, वह तमाम बालिग व्यक्तियों को सौंप दी गई। प्रतिनिधि-निर्वाचन का अर्थ हुआ जहां एक व्यक्ति की सम्मति काफी थी, वहां तमाम बालिग व्यक्तियों की सम्मति की आवश्यकता हुई। तमाम बालिग व्यक्ति तमाम समाज का काम कैसे करेंगे? तो उनके प्रतिनिधियों पर उसका भार आया। यहीं से चुनाव प्रणाली का जन्म हुआ। प्रतिनिधि कैसे चुने जायं, क्या उसकी विधि हो—इसका बड़ा शास्त्र और विधान बनाना पड़ा। इस तरह हम देखते हैं कि समाज-प्रधानता और प्रजासत्ता दोनों के सम्मेलन का एक यह निश्चित अर्थ हुआ कि हमारा प्रत्येक व्यक्ति व्यवस्था चलाने की क्षमता, कार्य-व्यवस्था देने की बौद्धिक और नैतिक योग्यता रखता हो। अर्थात पहले जहां एक या कुछ व्यक्तियों के योग्य और सक्षम होने से काम चल जाता था, वहां अब प्रायः प्रत्येक बालिग व्यक्ति को कायिक, वाचिक, मानसिक—सब दृष्टियों से योग्य बनने की आवश्यकता हुई।

इस तरह हमें प्रत्येक व्यक्ति को एक अंश तक स्वावलंबी और बाद में परस्पराश्रित बनाना पड़ेगा। स्वावलंबी बनाने के लिए स्व-श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ानी होगी और परस्पराश्रय के लिए सहयोग की भावना। लोकतंत्र-शासन में प्रत्येक नागरिक का महत्व है; उसी तरह शांति-स्थापना की जिम्मेदारी प्रत्येक नागरिक की है। अतः हमें प्रत्येक नागरिक को उसकी जिम्मेदारी बतानी और समझानी होगी। शांति-भंग की अवस्था में शांति-रक्षा के लिए उसीको जिम्मेदार ठहराना होगा, शांति-रक्षण-की योग्यता

और क्षमता उसमें लानी होगी। इस दृष्टि से हमारी शिक्षा-पद्धति, राज्य-यवस्था, पुलिस तथा सेना-पद्धतियों में परिवर्तन करना पड़ेगा। अभी हमने इसपर बहुत कम विचार किया है। अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में अभी हमने प्रारंभिक आर्थिक उत्पादन आदि समाजिक प्रश्नों को ही हाथ में लिया है। बेशक हमने शांति का वातावरण पैदा किया है—विश्व में पंचशील की भावना फैलाई है; परंतु अभी प्रत्यक्ष शांति-रक्षक प्रणालियां नहीं ली हैं, न तो हमने छोटे-बड़े सार्वजनिक और राजनैतिक झगड़ों को निपटाने के लिए पंच-फैसले की प्रणाली डाली है, न प्रत्यक्ष दंगे या युद्ध को रोकने के लिए शांति-सेना का ही बीजारोपण किया है। इसलिए हमारा सुझाव है कि भीतरी शांति-रक्षा की दृष्टि से भारत सरकार एक कमीशन बैठाये जो इस बात की जांच करे कि मौजूदा अदालत-प्रणाली की जगह पंच-फैसला या सशस्त्र पुलिस-दल की जगह निःशस्त्र पुलिस-दल कायम करने का समय आ गया है या नहीं; यदि हां तो उसके क्या उपाय हैं; यदि नहीं तो वह स्थिति कैसे लाई जा सकती है? इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय युद्ध को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ में निःशस्त्र सैन्य खड़ी करने की आवश्यकता पर विचार किया जाय। निःशस्त्रीकरण की ओर तो प्रगति के चिह्न दिखाई देते है, परंतु कहीं-न-कहीं प्रत्यक्ष निःशस्त्र सैन्य खड़ा होना चाहिए—वह कहां हो, यह भी सोचना चाहिए।

लेकिन जबतक भिन्न-भिन्न राज्यों की सरकारें अपने भीतरी मामलों में निःशस्त्र पुलिस और अंतर्राष्ट्रीय युद्धों के लिए निःशस्त्र सैन्य बनाने की स्थिति में न हों, तबतक यह उचित और आवश्यक मालूम है होता है कि गैर-सरकारी तौर पर शांति-दल कायम किये जायं और सरकार उनकी हर तरह मदद करे।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि यदि गैर-सरकारी तौर पर शांति-दल खड़ा किया जाता है, या किया गया है, तो उसे आज की सरकारें किस हद तक, किस तरह सहायता या सहयोग दे सकती हैं।

१. इसमें मेरा पहला सुझाव तो यह है कि भारत सरकार अपने

तथा राज्यों के गृह-मंत्रियों को यह हिदायत दे कि दंगे-फिसाद को रोकने के लिए—निवारक उपायों पर बहुत ज्यादा जोर दें—डंडे या गोली का आश्रय पुलिस उसी अवस्था में ले, जब वह प्रारंभ के तमाम निवारक उपायों से काम ले चुकी हो। हर गोलीबार के बाद केवल अदालती या महकमी जांच ही काफी नहीं है; यह भी इतमीनान गृह मंत्री करलें कि गोली चलाने के पहले तमाम निवारक उपाय पुलिस कर चुकी थी या नहीं। यदि नहीं कर चुकी थी तो उससे जवाब तलब किया जाय. . .यह उसकी नालायकी या नाकामयाबी समझी जाय और ऐसा मानकर उसके खिलाफ उचित कार्रवाई की जाय। इसी तरह जो गृह मंत्री, या पुलिस के आला अफसर या तो दंगे को बढ़ने ही न दें, या बढ़ने पर बिना गोली चलाये उसे रोक दें—उनकी तारीफ—वाह-वाही की जाय, उनकी पीठ ठोंकी जाय, उनकी तरक्की की जाय। सरकार उन्हें बता दे कि गोली चलाने का अधिकार होते हुए भी, हम नहीं चाहते कि गोली चलाकर दंगे शांत किये जायं। निवारक उपाय कौन-कौन से हो सकते हैं, मौजूद निवारक उपाय काफी न हों तो नये कौन से कदम उठाये जा सकते हैं—इसके लिए एक कमेटी बैठाई जाय—मौजूदा परिपाटी, उपाय, नियम या जाब्ते पर ही संतोष न मान लिया जाय। जो गृह मंत्री इस दिशा में समय पर उचित कार्रवाई नहीं करते हैं, उनकी कमी और खामी समझी जाय।

२. दूसरे तमाम सरकारी एजेंसियां दंगे की संभावनाओं, झगड़े-फिसाद को पैदा करनेवाली परिस्थितियों की सूचना फौरन से पेश्तर अपने उच्च अफसरों को तथा शांति-दल के संयोजकों को दें। अपने-अपने महकमे के अपनी-अपनी जिम्मेदारी के काम करते हुए भी, उन तमाम एजेंसियों का यह विशेष कर्तव्य करार दिया जाय कि वे शांति-रक्षा का ध्यान रखें और छोटे-बड़े लड़ाई-झगड़े जो मारपीट और दंगे-फिसाद का रूप धारण कर लेते हैं—उन्हें वहीं रोक देने का प्रयत्न करें। वरिष्ठ अधिकारी उनसे भी जवाब-तलब करें और पूछें कि इस दशा में उन्होंने क्या-क्या किया है—और जो नहीं किया है तो क्यों ?

३. सरकार अपने तमाम कर्मचारियों को यह जाहिर करदे कि सरकार हर तरह शांति चाहती है और शांति-भंग करनेवालों को चोर, डाकू और खूनी से कम मुजरिम नहीं मानती। अतएव किसी भी राज-कर्मचारी के परिवार में से कोई कहीं भी शांति-भंग करता हुआ—या दंगे-फिसाद में भाग लेता हुआ पाया जायगा, तो उस कर्मचारी से जवाब-तलब किया जायगा। हरएक कर्मचारी देखे कि उसका कोई आश्रित व्यक्ति कहीं भी दंगे-फिसाद में दिलचस्पी न ले, और यदि लेता हुआ पाया जाय, तो उसे रोकने और मना करने का प्रयत्न करे। उसके पास अपनी बचत का इतना मसाला होना चाहिए कि हर शख्स यह मान सके कि उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद उसका आश्रित दंगे-फिसाद में पड़ा। पड़ने के बाद उसने उनके खिलाफ क्या कार्रवाई की—इसका हिसाब भी उसके पास होना चाहिए।

४. सरकार ने कितनी ही संस्थाओं, संगठनों, संघों, कंपनियों, आदि को मान्यताएं दे रखी हैं। उन मान्यताओं के कारण उन्हें सरकार से तरह-तरह की सुविधाएं-सहायताएं प्राप्त होती हैं। सरकार से संबंधित कई महकमे जैसे पी० डब्ल्यू० डी०, शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि हैं, जिनसे कई गैर-सरकारी व्यक्ति तरह-तरह से लाभ उठाते हैं। उन सब पर सरकार यह नियम लागू करे कि यदि वे या उनके आश्रित दंगे-फिसाद में लिप्त पाये गए तो उनकी मान्यता का उस पर असर पड़ेगा। अपनी मान्यता देने में सरकार शांति-रक्षा की एक आवश्यक शर्त भी पहले से रख सकती है।

विद्यालयों, मजदूर-संघों पर इस दृष्टि से खासतौर पर निगाह रखी जाय और उनका सहयोग प्राप्त किया जाय।

५. गैर-सरकारी शांति-संगठनों को सरकार आर्थिक सहायता दे। उसके सैनिकों और स्वयंसेवकों के प्रशिक्षण में अपने कर्मचारियों के तथा उनके अनुभव से लाभ पहुंचाने की व्यवस्था करे। अलग और स्वतंत्र रहते हुए भी सरकार का ममत्व इनके साथ हो। दल के सैनिक जब गांवों में या दंगे के स्थानों में पहुंचे, तो सरकारी एजेंसियां उन्हें स्थान, खान-पान, वाहन आदि सब तरह की सुविधाएं पहुंचायें। अपनी पुलिस या सेना के

आने-जाने की सुविधा करना जैसा उसका वैधानिक और नियमानुसार कर्त्तव्य है, वैसा ही वह अपना यह नैतिक कर्त्तव्य समझे। उसमें काम करने-वाले, या दंगों में काम आ जानेवाले सैनिकों, दल-नेताओं का उचित सम्मान और गौरव करे—वे हर कहीं सरकारी कर्मचारियों के नजदीक सम्मान के पात्र समझें जायें। मारनेवाले दल से अधिक इस मरनेवाले दल की प्रतिष्ठा सरकार के मन में रहनी चाहिए।

ये कुछ सुझाव हैं। इसके और भी मार्ग सोचे जा सकते हैं।

: ८ :

ऊपर का प्रयत्न

पाठकों ने अबतक के विवेचन से देखा होगा कि हमने हर पहलू से, हर मोर्चे पर, अशांति को रोकने और शांति फैलाने के प्रयत्नों का विचार किया है। हिंसात्मक प्रवृतियों को कहीं भी बढ़ावा न मिले, ऐसे प्रसंग आने ही न पायें, आने पर उनका मुकाबला किस तरह किया जाय—सरकारी और गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर—यह हमने बताया। अब एक और ऊपर का उपाय बाकी रह जाता है। उसकी यहां चर्चा करेंगे।

प्रत्येक नागरिक तक पहुंचकर शांति प्रतिज्ञा कराने का कार्यक्रम हम ऊपर दे चुके हैं। शांति-सैनिक भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को बांटकर उनमें काम करें। विद्यालयों में, गांवों में, किस प्रकार काम किया जाय—यह भी बता चुके हैं। ये सब बुनियादी बातें हुई। लेकिन जब हम यह सोचते हैं कि आखिर ये दंगे-फिसाद इन्हीं पिछले कुछ वर्षों में क्यों हुए? तो उत्तर मिलता है सांप्रदायिक या राजनैतिक प्रश्नों को लेकर। गांव-गांव के, या ग्रामवासियों के, या नगरवासियों के घरेलू, व्यापार-व्यवसाय, जात-बिरादरी आदि आर्थिक या सामाजिक प्रश्नों को लेकर बड़े दंगे हुए हों—ऐसा दिखाई नहीं देता। कांग्रेस द्वारा स्वराज्य की मांग के पुरजोर होने पर भारत में हिंदू-मुसलमानों के उपद्रव शुरू हुए। उसके पहले धर्म के नाम पर हिंदू-मुसलमान

उपद्रव या युद्ध हुए थे और होते रहते थे--बाद में इनका उद्देश्य तो राजनैतिक हो गया--रूप अलबत्ता सांप्रदायिक रहा। इन दंगों से बापूजी बहुत परेशान रहे--उन्होंने शांति-दल बनाने का आयोजन भी किया था--परंतु स्वराज्य प्राप्ति के बाद, खासकर राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप, जो दंगे हुए वे सांप्रदायिक नहीं, बल्कि राजनैतिक थे। भले ही बाद में गुंडों ने, उपद्रवी तत्वों ने उन्हें अपने हाथ में ले लिया--ऐसा कहा जाय; परंतु उनका मूल राजनैतिक था और है। अतः इस शांति-कार्य में देश के राजनैतिक संगठनों, सांप्रदायिक तथा सामाजिक संस्थाओं के नेताओं, सूत्र-संचालकों, प्रभावशाली व्यक्तियों से संपर्क स्थापित किया जाय। कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर भारत की सभी राजनैतिक पार्टियां शांति और लोकतांत्रिक पद्धति से काम करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। हिंदू महासभा, राम-राज्य-परिषद् जैसे पुराणपंथी संगठन भी हिंसात्मक साधनों से काम लेने का समर्थन नहीं करते--भले ही युद्ध में या आत्मरक्षा के लिए शस्त्र चलाना जायज मानते हों; परंतु अपने संगठन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए शस्त्र का साधन उन्होंने अपनाया नहीं है। ये जो दंगे हुए हैं और होते हैं, इनमें प्रायः सभी राजनैतिक दलों के लोग पाये जाते हैं। कांग्रेसी भी इनसे वंचित नहीं रहे हैं। मुझे पता नहीं है कि इन सब राजनैतिक दलों के नेता और संगठनों के अध्यक्ष तथा पदाधिकारी शांति-रक्षा में इतने सावधान और तत्पर हैं या नहीं, जितने कांग्रेस या प्रजा-समाजवादी-दल के हैं। यदि नहीं हैं, तो उन्हें होने की जरूरत है। दंगा हो जाने के बाद इन संस्थाओं के अधिपतियों ने क्या इस बात की छानबीन की है कि उनके सदस्य तो कहीं इनमें भाग नहीं ले रहे हैं? यदि की है, तो भाग लेनेवाले के बारे में क्या कार्रवाई--अनुशासनात्मक--की, इसका भी हमें पता नहीं है। लेकिन यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया है तो यह सोचने की बात है। उन्हें जाग्रत होने और अपने कर्त्तव्य तथा संगठन के प्रति वफादार रहने की आवश्यकता है। इस तरह इन सभी राजनैतिक संगठनों को सचेत करने तथा इस दिशा में कार्य प्रेरित करने की दृष्टि से यह अच्छा हो कि उन सबके अध्यक्षों और

नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया जाय--उसमें शांति के उसूलों, प्रणालियों, उपायों पर विचार करके सबकी सम्मति से एक घोषणा-पत्र जारी किया जाय, जिसमें खास करके यह प्रतिज्ञा रहे कि हम हर हालत में शांतिमय तथा लोकतांत्रिक तरीके से ही अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करेंगे। ये घोषणाएं लगभग वैसी ही होंगी जैसीकि पंचशील के आधार पर भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की ओर से वक्तव्य निकलते हैं। इससे दो लाभ होंगे—एक तो संगठन के नेता खुद अपने संगठन के हित में शांति-रक्षा के प्रति जागरूक रहेंगे, दूसरे उनके सदस्यों और अनुयायियों पर एक नियंत्रण रहेगा और उसके भंग होने की हालत में अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकेगी। इन सारी बातों का असर यह होगा कि दंगों की बाढ़ में जरूर रुकावट पैदा होगी। अभी तो इस तरह हो रहा है जसा शांति-रक्षा का कोई धनी-धोरी ही नहीं है। फकत एक सरकार और कांग्रेस ही उसके प्रति जागरूक है। वास्तव में देश की हर पार्टी, हर संस्था और संगठन की यह जिम्मेदारी है।

तो अब यह परिषद या सम्मेलन कौन बुलाये? मेरी समझ में इस समय भारत में तीन ही व्यक्ति ऐसे हैं जो इस काम को कर सकते हैं--जिनके बुलाने से यह सम्मेलन भली-भांति हो सकता है। एक हमारे माननीय राष्ट्रपतिजी, दूसरे विनोबाजी और तीसरे पंडित जवाहरलालजी। राष्ट्रपति होने के कारण कुछ वैधानिक शिष्टाचार की या परंपरा-संबंधी कठिनाइयां इसमें बाधक हों, तो हम नहीं जानते। नहीं तो उनका देवोपम व्यक्तित्व इसमें बहुत सफल हो सकता है। विनोबा इसलिए इसके अधिकारी हैं कि वे धर्म, जाति, पक्ष, वय अधिकार—सबसे परे हैं, और इस दृष्टि मे सर्वाधिक पात्र माने जा सकते हैं।[1] हमारे पंडितजी यद्यपि एक राजनैतिक

---

१. हाल ही में 'ग्रामदान' के सिलसिले में पूज्य विनोबा के सान्निध्य में जो सर्वदलीय सम्मेलन हुआ, वह इस विषय में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। उसने शांति-स्थापना के लिए ऐसे प्रयत्नों का मार्ग सरल कर दिया है।

पक्ष के नेता हैं, फिर भी मूलतः वह साधुमना हैं और अब तो वह राष्ट्रीय नहीं, अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति बन गए हैं---शांति-स्थापना का काम विश्व में वह पहले ही से कर रहे हैं---अतः वह अपनी इस भूमिका पर से सबको निमंत्रण दें तो यह भी सब तरह उचित होगा। इन सुझावों के बाद यह काम किस तरह संपन्न हो---इसका निर्णय करना इन्हीं महानुभावों पर छोड़ना उचित है। इसकी आवश्यकता और उपयोगिता के बारे में मैं समझता हूं किसीका मतभेद न होगा। इससे हम शांति की दिशा में आगे ही बढ़ेंगे---पीछे कदापि नहीं हटेंगे।

यह सम्मेलन कब बुलाया जाय? अच्छा तो यह होता कि आम चुनावों से पहले यह उद्योग किया जाता, जिससे चुनावों का स्तर और ऊंचा हो जाता। परंतु उस अवस्था में यह सम्मेलन विनोबाजी के निमंत्रण से होता, जिससे किसीको यह संदेह न होता कि चुनाव में अपने पक्ष को प्रबल बनाने के लिए यह आयोजन किया जा रहा है। लेकिन अब तो चुनाव हो चुके हैं और सरकारें बन चुकी हैं। यह काम अब फौरन हाथ में लिया जा सकता है जिससे अगले पांच साल सरकारों का काम भी अच्छी तरह हो और विकास तथा निर्माण की योजनाएं भी जोरों से आगे बढ़ाई जा सकें।

इसी तरह समाचार-पत्रों के संपादकों और संचालकों का भी एक सम्मेलन बुलाया जाना चाहिए। समाचार-पत्रों में अक्सर दंगों के और बड़े व्यक्तियों के अपमानित किये जाने के समाचार ऐसी सुर्खियों में छपते हैं कि जिनसे लोगों में सनसनी और उत्तेजना तो फैल जाती है, परंतु गुंडों और उपद्रव-कारियों के प्रति मन में अरुचि नहीं उत्पन्न होती। चाहिए तो यह कि खुद उपद्रवकारियों को ग्लानि और लज्जा उत्पन्न हो---इस तरह से ये समाचार अखबारों में छपें। उनका सहयोग लेने के लिए ऐसे सम्मेलन के द्वारा और भी प्रयत्न किया जा सकता है।

इसके साथ ही मजदूर और किसान-संघों, सांप्रदायिक जमातों---जैसे अकाली-दल, मुस्लिम-लीग, महागुजरात या महापंजाब समितियों के नेताओं का भी एक सम्मेलन अलग से बुलाया जा सकता है। मतलब यह

कि केवल बुनियादी, शैक्षणिक या प्रचारक काम मे संतोष न मानकर ऊपर के जिम्मेदार व्यक्तियों और नेताओं पर भी शांति-रक्षा का प्रत्यक्ष भार डालना परम आवश्यक है।

: ९ :

शांति की साधना

जिसे हम समाज कहते हैं वह व्यवस्थित मनुष्यों का एक समूह मात्र है और उसे यदि भौगोलिक सीमा में बांध देते है तो वही एक देश हो जाता है। कोई देश जब एक संविधान से अपना शासन, नियंत्रण, व्यवस्था करता है तो राष्ट्र कहलाता है। अर्थात सबकी इकाई मनुष्य या व्यक्ति है। अतः यदि हमें समाज के या राष्ट्र के लिए कुछ भी काम करना हो तो व्यक्ति को छोड़कर नहीं कर सकते; हमें जो कुछ भी क्रिया करनी है वह मुख्यतः व्यक्ति पर ही। इसी तरह यदि अपने देश या विश्व में शांति का साम्राज्य कायम करना है, शांतिमय जीवन बनाना है, तो पहले शांति की शिक्षा-दीक्षा देनी होगी—उसके मन में शांति के संस्कार डालने होंगे—विचार और आचार दोनों मे उसके चरित्र में शांति की प्रतिष्ठा करनी होगी, उसे शांति की साधना का मार्ग दिखाना होगा। अशांति जिन कारणों से पैदा होती है उन्हें निर्मूल करने, अशांति के कारण उत्पन्न हो जाने पर जिन सद्गुणों से वे प्रभावहीन या निर्मूल हो सकते हैं उनकी उपासना करने, की विधि बतानी होगी। हम पहले बता चुके हैं कि घर, संस्था तथा समाज में अशांति के मुख्य कारण स्वार्थ-भेद, मत-भेद, स्वभाव-भेद, संस्कार-भेद होते हैं। पति-पत्नी, माता-पिता, मित्र, पड़ौसी सबके कुछ-न-कुछ वाजिब स्वार्थों में भी भेद रहता ही है। कहते हैं मां बेटी को ज्यादा चाहती है, बाप बेटे को ज्यादा प्यार करता है। यदि हम इसे एक स्वाभाविक या छोटी बात मानकर तूल नहीं देते हैं तो कोई झगड़ा नहीं होता; यदि हम इसी बात का बतंगड़ बनादें, तो बात-की-बात में दोनों में मनमुटाव और

झगड़ा हो सकता है। इसी तरह जमीन-जायदाद पर बाप-बेटों का हक होता है। परंतु बाप उसे अपनी मानने लगे, बेटा अपनी समझने लगे तो विरोध पैदा हो जाता है। इसी तरह संस्था और समाज की भी बात समझ लीजिये। प्रकृति भेदमयी है। परमेश्वर एक है। एक परमेश्वर में भेद की अवस्था उत्पन्न होना ही प्रकृति के प्रादुर्भाव का लक्षण है। सृष्टि, मनुष्य, प्रकृति के अंतर्गत है, उससे ऊपर वह शरीर के रहते हुए शरीर रूप में नहीं उठ सकता। प्रकृति के प्रभावों से वह अपने को जीवित रखते हुए सर्वथा नहीं बचा सकता। एक उदाहरण लीजिये--मनुष्य और पशु का, स्त्री और पुरुष का। यह भेद प्राकृतिक है, शरीर से तो अभीतक इस भेद को कोई नहीं मिटा सका; दोनों के शरीर को नजदीक लाकर अलबत्ता समाज और राष्ट्र के नेताओं ने दोनों में सामंजस्य लाने का--मेल बिठाने का यत्न किया है। उससे हम एक-दूसरे के बहुत नजदीक आये हैं; पति-पत्नी के रूप में अपने को जन्म-जन्मांतर के लिए एक-दूसरे के साथी मानने लगे, माता-पिता, गुरु, अतिथि देवता हो गए; गाय माता हो गई, यह सब प्राकृतिक भेदों को निर्बल बनाने--परस्पर विघातक न होने देकर परस्पर हितकारक सहयोगी बनाने--की परिपाटी या प्रक्रिया हुई। इससे मनुष्य-जाति ने बहुत लाभ पाया--उसका विकास हुआ। सो यह जो सामंजस्य की, एकता की, सहयोग की, प्रेम की भावना है, यह मनुष्य और जीव-मात्र में परमेश्वर का, परमात्मा का अंश है, परमात्म-तत्व का प्रभाव है। इस तरह भेद में से एकता लाने का यत्न करना परमात्म-शक्ति की प्रेरणा है। भेद प्रकृति की और एकता या अभेद परमात्मा की देन या प्रेरणा या स्वभाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि भेदों को विरोध का रूप लेने देना प्रकृति से नीचे जाना है, भेद को एकता, सहयोग की तरफ ले जाना प्रकृति से ऊपर, परमात्मा की तरफ जाना है। प्रकृति से नीचे जाना अधोगति है, प्रकृति से ऊपर उठना उर्द्ध्वगति है। दोनों दशाओं में हमारा शरीर हमारा ही शरीर रहेगा; परंतु हमारी भावनाओं में फर्क पड़ जायगा, दृष्टि में अंतर आ जायगा। विरोध की दिशा

में चलेंगे तो हम आसुरी शक्तियों के प्रभाव में जायेंगे; सहयोग, अभेद, एकता की दिशा में गमन करेंगे तो दैवी कक्षा की ओर प्रवृत्त होंगे। कहने का मतलब यह कि भेद को भेद तक रहने देना एक बात हैं, उसे विरोध बना लेना दूसरी बात है। भेद से एकता उत्पन्न करना एक बात है, भेद में से विरोध और बखेड़ा उत्पन्न करना दूसरी बात है। भेद में से विरोध लाते हैं तो हम नीचे गिरते हैं, भेद की सीमाओं को समझकर उन्हें स्वाभाविक रूप में रखते हैं तो हम जहां-के-तहां रहते हैं, यदि हम भेदों को महत्व न देकर सहयोग की भावनाओं को बढ़ाते हैं तो ऊपर उठते हैं। अतः पहले तो हमें इस बात को समझ लेने की आवश्यकता है, अर्थात प्रकृति और पुरुष के स्वभाव व कार्य को जानना चाहिए और भेदों को विरोध मानने या बनाने की गलती से बचाना चाहिए; इतना ही नहीं, बल्कि उसे गौण या निर्बल बनाने और परस्पर सहयोगी बनाने का यत्न करना चाहिए। मतभेद को विरोध मानने से अशांति, मतभेद को एकता तथा सहयोग की भावना से मिटाने से शांति स्थापित होती है।

यह कैसे हो? परस्पर भेदों का समाहार करने की प्रक्रिया का नाम अहिंसा है। प्रकृति को मानना सत्य को पहचानना है; परंतु प्रकृति से ऊपर उठने का प्रयत्न करना अहिंसा की साधना है। अहिंसा की साधना से जब हम प्रकृति से परे उठ जाते हैं, तो प्रकृति की मूलगत एकता--परमेश्वर--के दर्शन होते हैं, जो सृष्टि और विश्व का परम सत्य है। इसीलिए बापू ने कहा है कि अहिंसा की साधना के बिना सत्य के दर्शन नहीं होते। मनुष्य के जीवन की सिद्धि के लिए अहिंसा के द्वारा सत्य तक, प्रकृति से परमेश्वर तक, अशांति से शांति की ओर, जाना आवश्यक है। जीवन की पकड़ सत्य में और जीवन का विकास अहिसा में है। दोनों की साधना से मनुष्य अपने तथा समाज के जीवन में शांति की स्थापना और प्रतिष्ठा कर सकता है।

अतएव मेरी राय में और सब बातों को, साधनों को छोड़कर, मनुष्य को हम सत्य और अहिंसा का—सत्याग्रह का--साधक बनायें, तो शांति की

समस्या अपने-आप हल हो जायगी। इस साधना के बिना हम अपने जीवन, घर, संस्था, समाज में से अशांति को नहीं हटा सकते। सत्य हमें निर्भय बनाता है, अहिंसा हमें सहयोगी बनाती है। सत्य से हममें दृढ़ता आती है तो अहिंसा से मृदुता; दोनों का मेल है—मनुष्यता। पशु-जगत में हिंसा का प्रभाव पाया जाता है, मनुष्य-जगत में अहिंसा का। सृष्टि में हिंसा भले ही हो, मनुष्य-समाज में वह नहीं रह सकती। सृष्टि का काम भले ही अहिंसा के अस्तित्व-मात्र से चल जाता हो, परंतु मनुष्य-समाज का काम अहिंसा के प्रभाव और प्रतिष्ठा के बिना एक मिनिट नहीं चल सकता।

अतः हमें सत्य और अहिंसा की अहर्निश साधना करनी चाहिए। इसका सरल उपाय है यह दृढ़ संकल्प करना कि हम न किसीसे डरेंगे, न किसीको डरायेंगे; न किसीसे दबेंगे, न किसीको दबायेंगे। इससे बढ़कर शांति-साधना दूसरी नहीं हो सकती। इसके कुछ सरल सूत्र हम यहां अपने अनुभव से और दे देना चाहते है।

(१) जहां तक बन सके, दूसरों के साथ सहिष्णुता का ही नहीं उदारता और आदर का व्यवहार करना—कम-से-कम अन्याय और प्रतिहिंसा की भावना हरगिज न आने देना; अर्थात परस्पर आदर भाव।

(२) सहृदयता और सदयता का व्यवहार करना—कम-से-कम क्रूरता और अमानुषता से बचना, मानवीय भावों को अपनाना; अर्थात मानवता।

(३) प्रेम और विश्वास रखना—कम-से-कम द्वेष, अविश्वास और संदेह का शिकार न होना; अर्थात विश्वासशीलता।

(४) सदैव परमार्थ की भावना रखना—कम-से-कम स्वार्थ-साधु होने से अपने को बचाना। दूसरे शब्दों में प्राणि-मात्र के प्रति मंगल भावना रखकर, उसीसे प्रेरित होकर जीवन के सब कर्म करना; अर्थात मांगल्य श्रद्धा।

इसके लिए आगे लिखे श्लोक का स्मरण बहुत सहायक होगा।

मंगलं भगवान् विष्णुः मंगलं गरुड़ध्वजः ।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ।।

कम-से-कम इसका अंतिम चरण 'मंगलायतनो हरिः" अर्थात "भगवान मंगलमय है, यह विश्व भगवान का मंगल रूप है" निरंतर स्मरणीय है ।

(५) विपत्ति, संकट, भय या खतरे को निमंत्रण तो न दे, परंतु आता हुआ देखकर उसका स्वागत करें, निश्चितता और सावधानी से उसका सामना करें—कम-से-कम धैर्य न खोयें, घबरायें नहीं; अर्थात धैर्य ।

(६) मत-विरोध और स्वार्थ-विरोध की अवस्था में तीसरे आप्तजन द्वारा उसका निर्णय कराना, उसके लिए अभद्र, अशिष्ट, हिंसात्मक साधनों से काम न लेना; अर्थात पंच-फैसला ।

आशा है, ये संकेत पाठकों को शांति-साधना में सहायक होंगे । यदि हम यह साधना करते हैं तो फिर शांति-संगठन का काम आसान हो जाता है और आगे चलकर वह अवस्था आ सकती है जिसमें हमारा शांति का संगठन अनावश्यक हो जायगा—शांति मनुष्य और समाज का स्वभाव बन जायगी । उस दिन को शीघ्र लाने के लिए हम भगवान से प्रार्थना करें । वह दिन सर्वोदय की स्थापना और सिद्धि का दिन होगा ।

"ॐ शांतिः शांतिः शांतिः"

परिशिष्ट

शांति-सेना का लक्ष्य

रचनात्मक संस्थाएं और शांति-सेना

शांति-सेना और कुछ प्रश्न

शांति-सेना : प्रश्नोत्तर

शांति-सेना मे कर्तव्य-विभाजन और विचार-शासन

: १ :

शांति-सेना का लक्ष्य और शांति-सैनिक की योग्यताएं

(विनोबा)

बीमारी मेरे लिए बहुत दफा प्रसाद होती है। हर बीमारी में हम यही अनुभव आया कि मेरे चित्त की एकाग्रता पराकाष्ठा तक पहुंच जाती है। मुझे एकाग्रता सहज सधती है; परंतु बीमारी में जो एकाग्रता होती है—मैंने चांडील मे भी देखा, उसके पहले भी देखा और इस बार केरल में भी देखा कि वह करीब-करीब समाधि-कोटि में आ जाती है और उसमें मुझे नये विचार सूझते हैं।

जैसे रामदास स्वामी को एक दर्शन हुआ था कि आगे क्या होगा, वैसे ही मुझे लगा कि ग्रामदान तो हो चुका, अब ग्रामराज्य के रक्षण की चिंता करनी चाहिए। तो हमें हनुमान की याद आई। रामकाज हो चुका, अब रक्षा के लिए हनुमान चाहिए। देश में जो ग्रामराज्य बन चुका है, उसकी रक्षा के लिए शांति-सेना बननी चाहिए। मैंने हिसाब लगाया कि पांच हजार मनुष्यों की सेवा के लिए एक शांति-सैनिक चाहिए, अर्थात पैंतीस करोड़ की सेवा के लिए सत्तर हजार सैनिक खड़े करने चाहिए।

शांति-सैनिक की योग्यता में सत्याग्रही लोकसेवकों की जो पंचविध निष्ठा है, वह तो चाहिए ही, उससे कुछ अधिक भी चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। लोक-सेवक किसी राजनैतिक पक्ष का सदस्य नहीं होना चाहिए। इस विषय में बहुत चर्चा होती है। निष्कामता की शर्त लोगों को चुभती नहीं है, यद्यपि वह इतनी कठिन है, कि मुझे लगता है कि इसके वास्ते रात-दिन 'गीता' की ध्वनि सुनाई देगी, तब होगा। पर

उसकी लोगों को इतनी चिंता मालूम नहीं होती। उनको चिंता यह होती है कि पक्षातीतवाली बात उचित है या अनुचित! लश्करी परिभाषा में भी यह मान्य है कि सिपाही सबका सेवक होना चाहिए, इसलिए सत्याग्रही लोक-सेवकों की प्रतिज्ञा में सब पक्षों से मुक्त होने की जो बात है, वह शांति-सैनिक के लिए अत्यंत आवश्यक है। हमारा शांति-सैनिक जातिभेद-निरपेक्ष होना चाहिए, सब धर्मों को समान माननेवाला होना चाहिए, क्योंकि ऐसा नहीं होता है, तो अशांति का बीज उसीमें पड़ा है। इसी तरह वह पक्षातीत भी होना चाहिए, यह बात ध्यान में आनी चाहिए।

छठी निष्ठा : अनुशासन

पहले की पंचविध निष्ठाएं शांति-सैनिक में चाहिए ही; उसके लिए एक और छठी निष्ठा रख दी है और वह एक अद्भुत ही वस्तु है—कम-से-कम विनोबा के लिए, कि शांति-सैनिक को सेनापति का आदेश मानना ही चाहिए। अभीतक हम शासन-मुक्त समाज, विचार-स्वातंत्र्य की जो बात बोलते आये हैं, उससे बिल्कुल भिन्न ही नहीं, बल्कि विपरीत-सी यह बात भासित होती है। शांति-सेना और बातों में तो दूसरी सब सेनाओं से बिल्कुल विरुद्ध ही है, परंतु अनुशासन के बारे में उनसे कम सख्त नहीं हो सकती, कुछ अधिक ही हो सकती है; क्योंकि उसमें दूसरों का प्राण लेने की ही सहूलियत नहीं है। अपने हाथ में शस्त्रास्त्र पड़े होने पर भी प्राण खोने का मौका तो आता है, इसीलिए वहां शौर्य है और इसीलिए उसका गौरव भी है। सशस्त्र सेना का प्राचीन काल से आजतक जो गौरव है, वह इसीलिए है कि उसमें प्राण खोने का भी मौका है। उतना ही शौर्य का अंश उसमें है, इसलिए उसका गौरव है। पर उसके साथ प्राण लेने का भी उसमें माद्दा है, सहूलियत है, तैयारी है, योजना है। यहां तो बिल्कुल ही एकांगी बात हो गई कि हमें अपना प्राण खोने की बात और दूसरों के प्राण बचाने की बात है। कोई तलवार से अगर हमारे गले पर प्रहार करता हो, तो अपने गले पर प्रहार न हो, यह तो अपने को चिंता होनी ही नहीं चाहिए, पर प्रहार करनेवाले के हाथ को किसी प्रकार की चोट न लगे, यह भी चिंता

होनी चाहिए। यहां बिना अनुशासन के नहीं चलेगा। सेवकों को कमांडर का कमांड मानने की आदत पड़नी चाहिए। आदेश हो कि "रुक जाओ", तो तुरंत रुक गए, सोचने की बात ही नहीं, ऐसी आदत पड़नी चाहिए, तब काम होगा।

माता की भांति सबकी सेवा

शांति-सेना हमेशा की सेवा-सेना होगी। 'शांति-सेना' गांधीजी का शब्द है। वह भी महसूस करते थे कि शांति-सेना हमेशा के लिए सेवा-सेना रहनी चाहिए। जगह-जगह जो अशांति हो, वहां हम पहुंच जाय और अपना जीवन अर्पण करें। इस प्रकार से वह चीज निकली। परन्तु शांति-सैनिक इस प्रकार से नहीं बनता है। वह वही हो सकता है, जो मातृवत् सबका सेवक होगा। 'मातृवत्' शब्द का मैंने बहुत सोच-समझकर प्रयोग किया। मां बच्चों को कठिन प्रसंग में जैसे बचाती है, वह अद्भुत ही है। किसी शेरनी का बच्चा पकड़ लिया जाता है, तो वह किस तरह टूट पड़ती है, बावजूद इसके कि वह जानती है कि सामने बंदूक खड़ी है, उससे वह खत्म होनेवाली है। उसकी तृप्ति तब होती है, जब वह गोली का शिकार बनती है और समझ लेती है कि बच्चे के लिए उसे जो करना चाहिए था, वह उसने किया। शांति-सेना का तत्व यही है। शेरनी चाहती है कि बच्चे के छीननेवाले को मैं फाड़ खाऊं। वह सर्वोदय-विचार की तो माननेवाली नहीं है। अपने शिशु के बचाव का विचार उसके मन मे है। वह उद्यत है मारने के लिए, मरने के लिए भी, बल्कि मरने तक वह कोशिश करती है और मरने के बाद ही उसका प्रयत्न समाप्त होता है! हमारे सेवकों में जो शांति-सैनिक बनेंगे, उनमें स्वाभाविक ही ऐसी प्रवृत्ति होनी चाहिए कि हमारे समाज में कहीं भी खतरा पैदा हो, तो जैसे माता बच्चे की रक्षा के लिए दौड़ जायगी, उसी तरह शांति-सैनिक भी दौड़ जायेंगे। उसमें उसे अपनी रक्षा का कोई ख़याल ही नहीं आयेगा। शांति-सैनिक मुख्यतया सेवा-सैनिक होगा।

सेना का आध्यात्मिक आधार

हमारी सरकार जो सेना बनाती है, उसका आध्यात्मिक और भौतिक आधार क्या है ? उसका आध्यात्मिक आधार है, लोगों का प्राप्त किया हुआ 'वोट' । अन्यथा उसमें और लूटनेवाली टोली में कोई फर्क नहीं ! लेकिन वोट का आधार बहुत ही क्षीण है । किसी भी देश में, जहां लोकतांत्रिक ढांचा है, वहां तीस फीसदी वोट से चुने हुए लोग सौ फीसदी पर सत्ता चलाते हैं । जो नहीं चाहते हैं, उनपर अगर मैं सेवा लादूं, तो वह एक अजीब-सी बात हो जायगी । पर आज जो लोग नहीं चाहते हैं, उन पर सेवा नहीं, सत्ता लादने की बात है और इस आधार पर सेना बनती है । ऐसा माना जाता है कि जनता का वोट उसका आधार है ।

'सम्मति-दान' की मांग

हमारी शांति-सेना के पीछे कोई आध्यात्मिक आधार चाहिए । सिवाय इसके कि हम करुणाप्रेरित हैं और सेवा करना चाहते हैं, इससे अधिक कोई आध्यात्मिक आधार हमें मान्य नहीं । यह ठीक है कि इस तरह से सेवा करने का सबको अधिकार है, परंतु शांति-सैनिक होकर मैं सबकी सेवा करना चाहता हूं और बिना आपकी सम्मति से मैं सेवा करूं, तो मेरे पांवों में ताकत नहीं आयगी । मुझे सर्वानुमति से वोट चाहिए, ऐसी बात मैं नहीं कहता । पर ग्राम समाज की, जिसकी मैं सेवा करना चाहता हूं, उसकी सम्मति हमने नहीं ली । आज कांग्रेस, पी० एस० पी० आदि के पीछे कुछ जनता है । आपके-हमारे पीछे या सर्वोदय का काम करनेवालों के पीछे क्या है ? यह पूछने पर मेरे जैसा मनुष्य कह देता है कि हमारा यह संकल्प विश्व-संकल्प है । जहां निर्मल, शुद्ध संकल्प होता है, वहां वह विश्व-संकल्प बन जाता है । यह कहने का हमारा अधिकार है, पर लोगों में जाकर हम सिर्फ मर मिटें, इतनी तो हमारी आकांक्षा है नहीं । अपेक्षा यह है कि हमारी उपस्थिति का लोगों के दिलों पर ऐसा असर पड़े कि जिससे शांति बने । तो इस प्रकार न सिर्फ सेवा का अधिकार बल्कि लोगों के दिलों पर नैतिक प्रभाव डालने का हम जो अधिकार चाहते हैं, उसके लिए, लोगों की

तरफ से कोई सम्मति होनी चाहिए। हमको रक्षक का अधिकार देनेवाला वोट हम आपसे नहीं मांगते; बल्कि हमारा कार्य आपको पसंद है, इस वास्ते आप कुछ करेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा का निदर्शक सम्मति-दान हम आपसे मांगते हैं। सूत की एक गुंडी या उसका पर्याय-रूप कोई चीज--जैसे नारियल हमें दें, तो हम समझेंगे कि हमारे कार्य के पीछे जनता का आध्यात्मिक बल, उसकी सम्मति है। हमारे लिए भौतिक आधार क्या है? शांति-सैनिक जिनकी सेवा में लगेगा, उन सब घरों से उसके लिए सम्मति के तौर पर हर महीने कुछ-न-कुछ मिलना रहेगा। आपको कुल भारत में इस तरह फैल जाना है। नेताओं ने जो संहिता बनाई है, उसने हम पर जिम्मेदारी डाली है कि हम हर गांव में फैलें।

(निवेदक-शिविर, मैसूर, २६-६-५७)

: २ :

रचनात्मक संस्थाएं और शांति-सेना

सर्व-सेवा-संघ के सामने हमने बात रखी है कि तुमको तो सारे भारत में बिल्कुल फैल जाना है और वह फैल जाने का कर्त्तव्य, नेताओं ने जो संहिता बनाई उसमें आता है। यह मेरा उस संहिता का भाष्य समझ लीजिये। एक भाष्य तो मैं कल को सार्वजनिक सभा में कर चुका हूं और आज यह दूसरा भाष्य आप लोगों के सामने रख रहा हूं। अ० भा० ग्रामदान-परिषद् के वक्तव्य की संहिता कह रही है कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट के काम का सहयोग होना वांछनीय है। इसका अर्थ आप क्या समझे? यह संहिता आपको हिदायत दे रही है कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट पांच लाख गांवों में फैलनेवाला है। तो कल वह कम्युनिटी प्रोजेक्टवाला अधिकारी आपके सामने आयगा और पूछेगा कि क्या आपके सुझाव हैं। इसपर आप क्या यह कहेंगे कि हमारा तो वहां मनुष्य ही नहीं है! तो उस संहिता के आदेश का पालन आपने नहीं किया। उनके साथ आपने सहयोग नहीं किया। यह कहना कि हमारा कोई

आदमी वहां नहीं है, यह कोई सहयोग है। जितने गांवों में वे फैले है, उतने गांवों में आपको फैल जाना चाहिए तब तो सहयोग होगा। हम चाहते हैं कि कुल गांव ग्रामदानी बने। यह न हो, तो भी उसकी हवा जरूर फैले और जो कम्युनिटी इत्यादि योजना चले, उस योजना पर सर्वोदय का रंग हो। सब दूर कम्युनिटी प्रोजेक्टवाले फैले हों और हम सब दूर न फैले हों, तो उस हालत में हमारा उन पर क्या रंग चढ़ेगा? वे कहेंगे हम मानते थे कि ये सर्वोदयवाले कुछ सहयोग कर सकेंगे लेकिन इनकी कोई हस्ती नहीं है। थोड़ी कोरापुट में है तो उतना सहयोग वहां पर मिला। इनके कुछ 'पाकेट्स' हैं, लेकिन सर्वत्र हमको उनका सहयोग नहीं मिल सकता। इस वास्ते इस संहिता ने हम पर जिम्मेदारी डाली है कि हम हर गांव में फैलें और उसका यह तरीका है कि ग्रामराज्य हो चुका है, ऐसा हम समझकर चलें। ग्रामदान का और ग्राम-निर्माण का कार्य भी जारी रहेगा, परंतु ग्राम्यरक्षण के लिए शांति-सेना जरूरी है और उसका आधार है सम्मतिदान। सम्मतिदान याने कार्यकर्ताओं के लिए पैसा या द्रव्य हासिल करने की युक्ति नहीं। वह हम उसी हिस्से में चलायेंगे जहां कि हम शांति-सेना की योजना बनायेंगे। नहीं तो हम घर-घर जाकर मांगेंगे, तो उसमें शक्ति का अपव्यय होता है। वह नाहक मांगना है। सक्रिय काम करने के लिए प्रतिज्ञा हमने नहीं मांगी है। हम तो इस सम्मति-दान को यह अर्थ देना चाहते हैं कि जिसने वह सम्मतिदान दिया, नारियल हमको दिया, उस शख्स ने प्रतिज्ञा की कि आपके काम में हमारा सहयोग होगा। आप काम नहीं करते, तो सहयोग काहे का मांगते हो? इसलिए जिस क्षेत्र में ऐसा काम करना चाहते हैं, उस क्षेत्र में वह सम्मतिदान की बात हम करेंगे और ऐसा क्षेत्र बनाते-बनाते सारे भारत को हम व्याप्त करेंगे।

मैंने कहा कि इसमें कमांडर की बात माननी होगी। श्रद्धेय सेनापति सैनिक और विशिष्ट क्षेत्र की सेवा-योजना—तीनों जहां मौजूद हो, वहां उस स्थान के लिए कोई कमांडर मिला है, तो उसकी कमांड माननी होगी।

सारे भारत की शांति-सेना के लिए भी कोई सुप्रीम कमांड चाहिए। यह परमेश्वर ही करेगा। जिस भाषा में मैं बोल सकता हूं, उससे दूसरी भाषा बोलने की ताकत मुझमें नहीं है। पर फिर मुझे लगा कि लक्षण यह दीखता है कि अखिल-भारत में शांति-सेना के सेनापतित्व की जिम्मेवारी विनोबा को उठानी होगी। ऐसा लक्षण दीखता है और वैसी मानसिक तैयारी विनोबा ने करली है।

यह बात आप लोगों के सामने तो हमने रख दी। हमारे दूसरे मित्रों के सामने भी रखी है जो चिंतित भी है कि देश में शांति कैसे बने। उसी दिशा में हमको तैयार होना है। उसके लिए क्या-क्या करना पड़ेगा, यह हमको नये सिरे से सोचना चाहिए।

इसके लिए मैं जो सोचता हूं उसके अनुसार करना यह पड़ेगा कि हमारी जितनी रचनात्मक संस्थाएं हैं, उनका इस काम के लिए समर्पण हो जाना चाहिए—चाहे वे खादी का काम करती हों, चाहे अस्पृश्यता-निवारण का, चाहे नई तालीम का। जो खादी-सेवक शांति का सैनिक नहीं बनेगा, उसको हम हीन नहीं समझेंगे, वह भी एक सेवक है। करे सेवा। परंतु जो खादी-सेवक शांति का सैनिक बनेगा, वह खादी को जिंदा रखेगा। दूसरा सेवक खादी को जिंदा नहीं रखेगा, बल्कि खादी के जरिये स्वयं जिंदा रहेगा। वह खादी का पालन नहीं करेगा, खादी उसका पालन करेगी। ऐसे भी लोग हमको चाहिए और वे समाज में करोड़ों की तादाद में हैं भी। आखिर हमने ज्यादा सेवक मांगे ही नहीं। देश में इन सत्तर हजार के अलावा जितने होंगे, हमारे स्वामी हैं वे। उनकी हमको सेवा करनी है।

पर ये सत्तर हजार कहां से आयंगे—यह जब हम सोचते हैं तो हमको पहला जो क्षेत्र दीखता है, जहां से चुनने का मौका हमको मिलना है और अपेक्षा रखने का अधिकार है, तो ये सारी संस्थाएं हैं। कभी-कभी ऐसा होने का संभव होता है कि अपनी अपेक्षा के क्षत्र से अपेक्षा पूरी नहीं पड़ती है और अनपेक्षित क्षेत्र से अपेक्षा पूरी पड़ती है। इसीलिए तो ईश्वर को मानना

पड़ता है। अगर आपकी सब-की-सब अपेक्षा पूरी होती, तब तो ईश्वर की कोई जरूरत ही नहीं है, ऐसा होता। और हम कहते, "हम हैं और हमारी योजना है, पार पड़ जायगी!" परंतु कोई चीज है जरूर, जिससे कि हमसे योजना नहीं बनती है, उससे बनती है। इसलिए अनपेक्षित क्षेत्र में भी ऐसे लोग हमको मिलते हैं। पहले हमको कोशिश तो अपेक्षित लोगों के क्षेत्र में करनी चाहिए। ऐसी जितनी रचनात्मक संस्थाएं हैं, कुल-की-कुल गांधीजी के नाम से जितनी निकली हैं, बाबा कहना चाहता है कि बाबा का उन सब संस्थाओं पर अधिकार है। उनमें एक भी संस्था यह नहीं कह सकती कि बाबा का अधिकार नहीं है। लेकिन फिर भी अधिकार कमबेशी होता है। बाबा का जहां अधिक-से-अधिक अधिकार था, ऐसी एक संस्था का ग्राम-सेवा-मंडल, गोपुरी, वर्धा का, हमने समर्पण करने का सोचा है। बंग आदि भूदान-कार्यकर्त्ताओं को कह दिया है कि तुम इस संस्था का चार्ज ले लो। सारे भूदान-सेवक बिल्कुल घर बार छोड़कर काम में लगे हुए हैं। तुम उस संस्था का अधिकार ले लो और जिस तरह से उसको चलाना चाहते हो, भूदान-यज्ञ-मूलक रूप उसको देने के लिए, उसमें जो भी परिवर्तन करना चाहते हो, कर सकते हो। ऐसा हमने उनको अधिकार दे दिया है। तदनुसार कुछ चर्चा होकर इस संस्था में परिवर्तन के लिए गुंजाइश है, वह आगे होनेवाली है। पर जिस वक्त यह प्रस्ताव किया था, तब शांति-सेना की बात उस संस्था के सामने हमने रखी नहीं थी। वह हमारे मन में थी। वह हम इधर कर रहे थे। सिर्फ इतना ही कहा था कि भूदान-मूलक (अब तो ग्रामदान-मूलक) ग्रामोद्योग-प्रधान शांतिमय क्रांति के लिए यह संस्था समर्पण हो। लकिन अब हम सोचते हैं कि बिना शांति-सेना के अहिंसात्मक क्रांति संभव नहीं है। तो वह शांति-सेना भी उस ध्येय के अंदर आ ही जाती है। संस्थावाले जरा सोचें और निर्णय करें। जो शांति-सैनिक नहीं बन सकते हैं, वे अपना कुछ काम कर सकते हैं। कोई यह न सोचे कि और किसीको यह न सुझाया जाय कि तुम शांति-सैनिक बनो! आखिर यह तो बात ऐसी है कि "हरिनो मारग छे शूरानो"—तो अंदर से

सूझना चाहिए। हाथ में तलवार हम दे सकते हैं, कि जाओ, मारने का साधन तुम्हारे पास दे दिया; मरने का मौका आया, तो राजी रहो। आज की पद्धति में यह भी होता है कि राजी रहने की बात ही नहीं है। वह पीछे हटेगा, तो गोली से मारा जायगा। एक दफा अगर उसके हाथ में बंदूक देकर ढकेल दिया आदमियों में, तो मरने का मौका आया। भागना रखा ही नहीं है उसके हाथ में। वह सहूलियत ही नहीं रखी। वह पीछे हटेगा, तो लोगों की मार खायगा। इस वास्ते उसके सामने आल्टरनेटिव (विकल्प) यही है कि पीठ दिखाकर अपने लोगों की मार खाय, नहीं तो सामनेवालों की मार खाय। शौर्य को बिल्कुल 'मेकनाइज़' (यांत्रिक) कर दिया। शौर्य यांत्रिक बन गया। ऐसी हमारी कोई हालत है नहीं। इस वास्ते इसमें सावधानी से कदम उठायें, यही अच्छा है।

सैनिक संख्या कम मिले, यही अच्छा है। धीरे-धीरे वह बढ़ेगी। ग्राम-सेवा-मंडल हम इस काम के लिए अर्पण करना चाहते हैं, ऐसा उनको सुझाया। दूसरी भी संस्था ऐसी आयगी, जब यह ध्यान में आयगा कि शांति-सेना की बहुत जरूरत है। रामनाथपुरम् और मदुराई जिलों में ग्रामदान की हवा बहुत फैली। क्या अब आप समझते कि हैं वहा ग्रामदान होगा? मार-काट चल रही है, वहां ग्रामदान कैसे होगा? जो बुनियादी वस्तु है वह है शांति, बुनियादी प्रेम, परस्पर प्रेम; वह शांति अगर नही रही, तो प्रेम का उत्कर्ष जिसमें प्रकट होनेवाला है, वह कैसे होगा? इसलिए ग्रामदान वगैरा मृगजल साबित होगा! अब इधर हम केरल में घूमते थे, तो हमारी चिंता बढ़ रही थी पंजाब के लिए! अपने देश के लिए यह बड़ी दुखदाई बात है। बिल्कुल छोटी-सी चीज है। उसमें कोई सार नहीं है। एक लिपि की बात और वह भी ऐसी लिपि कि जिसमें एक-तिहाई अक्षर तो नागरी के ही हैं और दो-तिहाई में से एक-तिहाई करीब-करीब नागरी की शकल के हैं; थोड़े-ही अक्षर भिन्न हैं। ऐसी लिपि, भाषा का सवाल नहीं है, भाषा तो सब जानते हैं—पंजाबी। तो वह कोई बड़ी बात नहीं है। परंतु अड़े हैं और हिंसा करते हैं। मदुराई में हिंसा चली। किसी शहर

का कोई भरोसा नहीं रहा और शहरों का दिमागी अधिकार गांव पर चलता है। शहरों की बुरी हवा गांवों में फैलाने की सुव्यवस्थित आयोजना का नाम है इलेक्शन। ग्रामदानी गांव इलेक्शन से कैसे बचे, इसकी चिंता कोरापुट-वालों को पड़ी है। गांव ग्रामदानी हुआ। अपना सब एक करेंगे यह तय किया। वहां जो वोट मांगने के लिए आयंगे और वे अगर आग लगा जायंगे, तो क्या किया जायगा ? इसलिए गांवों का भी भरोसा नहीं रहा है। बिल्कुल ऐसी बेभरोसे की हालत में हम कैसे ग्रामदान बनायंगे ? एक क्षण में कुल-के-कुल ग्रामदान खतरे में आ सकते हैं। इसीलिए शांति-सेना की बहुत जरूरत है। उसके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे। इसलिए हम सबको सोचना पड़ेगा।

हमने कहा कि इसकी कमांड अब हमको हाथ में लेनी होगी, ऐसा लक्षण दीख रहा है। तदनुसार हमने आचरण भी आरंभ कर दिया है। अभी केरल की राजम्मा ने हमको एक पत्र लिखा था और वह किस तरह काम करेगी, इसकी एक योजना सविस्तार बनाकर हमारे पास भेजी थी। हमने वह पढ़ ली। योजना बहुत अच्छी थी। स्वतंत्र रीति से देखा जाय तो उपयुक्त योजना बनाई थी। पर हमने दो लकीरों का पत्र लिखा कि आपका पत्र मिला। पर फिलहाल, हम लोगों का धर्म फलानी-फलानी जगह में जाकर काम करने का ही है, ऐसा हम समझते हैं। बात खतम हो गई। उसके लिए कोई सबूत पेश नहीं किया, कोई दलील नहीं दी और वह बहादुर लड़की सीधे, जिस स्थान पर जाने के लिए कहा था, उस स्थान पर पहुंच गई। यहां आने के बाद उसको समझाया कि मैं क्या चाहता हूं, उसके पीछे क्या विचार है। बुद्धि का विकास तो होना ही चाहिए। परंतु बुद्धि-विकास के फेर में पड़कर काम देरी से होने लगा, तो डिमोक्रेसी (लोकशाही) का अभिशाप सर्वोदय को प्राप्त होगा। "डिमोक्रेसी इज़ डिले।" वह डिमोक्रेसी के पीछे अभिशाप है। डिमोक्रेसी में काम कभी त्वरित बनता नहीं। उसका स्पेलिंग ही 'डिले' है। ऐसे सर्वोदय का स्पेलिंग डिले हो जायगा ! काम नहीं बन पायगा। इस वास्ते यह नहीं होना चाहिए।

काम का जहां तक ताल्लुक है, वह पूरा करना चाहिए। फिर विचार के लिए स्वतंत्र हैं। काम ठीक हुआ यह भी सोच सकते हैं और उसकी चर्चा भी कर सकते हैं। विचार-विकास के लिए हम दिमाग खुला रखें, परंतु जहां हुक्म हुआ है, वहां जाना पड़ेगा। "हुक्म रजाई चल्लमा, नानक लिखया नाम।" नानक ने लिख दिया है कि नाम है उस हुक्म देनेवाले का, उसी हुक्म के अनुसार हमको चलना है।
(निवेदक-शिविर, मैसूर, २६-९-५७)

: ३ :

शांति-सेना और कुछ प्रश्न

निम्न प्रश्न पूछे गए हैं :

(१) शांति-सेना के बारे में आपने जो कल कहा, वह जंचा नहीं। आज तक हमने आपसे विचार-शासन के साथ कर्तृत्व-विभाजन की बात सुनी थी, अब आचार-नियमन की सुनी, तो क्या कर्तृत्व-विभाजन और आचार-नियमन एक ही है?

(२) कल आपने सुप्रीम कमांड की बात कही! वह शांति-सेना के बारे में ही कही है। कुछ भावी कार्यक्रम के बारे में नहीं कहा, ऐसा मुझे लगा। परंतु हममें से कुछ लोगों के बोलने से ऐसा डर लगता है कि सारे काम में सुप्रीम कमांड लेने की वृत्ति हमारी हो जायगी, यद्यपि आपकी वह देने की न हो।

(३) क्या शांति-सेना में लेफ्टीनंट, सक्सेसर्स (उत्तराधिकारी) का सवाल भी कमांड के साथ जुड़ जाता है?

(४) क्या हिंसक घटनाओं का सामना करने के लिए, केंद्रीकरण आदि जिन दोषों ने उन हिंसक घटनाओं को पैदा किया, उसी प्रकार की केंद्रित पद्धति हमें अपनानी होगी? हमें, अहिंसक ही क्यों न हो, पर क्या 'सेना' ही बनानी होगी?

क्या सेनापति अपने-आप ही हो जाता है या सब लोग मिलकर उसे बनायंगे ? आपके भाषण में आपने भगवान का नाम लिया, वही मुझे, 'सेविंग ग्रेस' मालूम हुआ । मुझे उम्मीद है कि भगवान आपको सेनापति नहीं बनायगा ।

उत्तर—आपने बहुत अच्छे सवाल पूछे हैं । अगर कल के व्याख्यान के बावजूद और बाद भी ऐसे सवाल उपस्थित नहीं होते, तो हम समझते कि हमारे सामने कोई 'डेड मैटर' (मुर्दा वस्तु) खड़ी है !

अंतिम साध्य

हमने शासनमुक्त समाज का ध्येय सामने रखा है । जहां शासनमुक्त समाज आयगा, वहां वह शांति-सेना-मुक्त भी होगा । उसमें सेवक-वर्ग होगा । एक-एक स्थान में हर घर के लोग, किसी सूरत से कोई गलत बात बनी, तो उसका प्रहार अपने ऊपर उठाने के लिए तैयार रहेंगे । बाप ने कोई गलत काम किया, तो बेटा उसका प्रहार उठाने के लिए तैयार रहेगा । बाप बेटे को संभालेगा और बेटा बाप को । अड़ोसी पड़ोसी को संभालेगा, एक गांव दूसरे गांव को संभालेगा । इस तरह से अंतिम दशा में उस-उस स्थान पर बात संभल जायगी, तो शांति के लिए दूर से किसीको कहीं न जाना पड़ेगा, न आना पड़ेगा । उस अंतिम दशा को हम लाना चाहते हैं, तो हमारी एक दिशा हो जाती है । परंतु हमें समझना चाहिए कि आज हिंसा-शक्तियां अत्यंत नुकसान करनेवाली हैं, यह स्पष्ट देखते हुए भी, संरक्षक के तौर पर वे क्यों मान्य होती हैं ? जिस किसीके साथ हम बात करते हैं, उससे पूछते हैं कि क्या आज की हालत में हिंसा-शक्ति में कोई ऐसी चीज है, जिससे कि मसला हल हो सकता है ? तो हर कोई कहता है कि कोई चीज नहीं है । फिर भी जहां रक्षण की बात आती है, वहां श्रद्धा से हिंसादेवी का आधार मान्य किया जाता है । इसका कारण क्या है, इस बारे में हमें सोचना चाहिए ।

शब्द-शक्ति का विकसन

शब्दों के प्रयोग के विषय में कोई बहुत ज्यादा झिझक नहीं होनी

चाहिए। शब्द समझाने के लिए होते हैं। उनका अर्थ हम ठीक समझें, तो शब्द-शक्ति विकसित होती है। देश में कुछ शब्द वीर-परंपरा से चले आये हैं और कुछ शब्द संत-परंपरा से। संत-परंपरा से आये हुए शब्दों में, उनकी छाया के तौर पर शब्दच्छाया, शब्द के अर्थ की छाया, अर्थ-छाया के तौर पर दुर्बलता भी दीख पड़ती है। नम्रता, दीनता, लीनता, निरहंकारिता, शून्यता, अनाक्रमणशीलता, शरणता, अपने लिए तुच्छता, आत्मनिंदा इत्यादि शब्दों का उपयोग संत हमेशा करते आये हैं। उनके जरिये अच्छे भावों के साथ कुछ बुरे भाव भी, दुर्बलता दिखानेवाले भाव भी प्रकट होते हैं। वीर-परंपरा से आये हुए शब्दों में अच्छे भावों के साथ बुरे भाव भी प्रकट होते हैं। आक्रमणकारिता, अहंकार, अस्मिता, सत्ता, लोगों पर लादने की वृत्ति आदि भाव शौर्य, धैर्य, वीर्य, पराक्रम के साथ-साथ आते हैं। दोनों परंपराओं से प्राप्त हुए शब्द हमारे लिए अत्यंत पवित्र हैं, यह समझना चाहिए। अगर इनमें से किसी परंपरा के शब्द हम तोड़ेंगे, तो जैसे पक्षी के पंखों में से एक पंख टूटा, तो पक्षी उड़ नहीं सकेगा, वैसी हालत होगी। दोनों पंख टूटे, तो वह उड़ ही नहीं सकेगा। हमारे विचार-शास्त्र के ये दो पंख हैं। 'महावीर' याने परिपूर्ण अहिंसा को माननेवाला, जैन-धर्मी। और दूसरा राक्षसों का संहार करनेवाला महावीर हनुमान। 'महावीर' संज्ञा संस्कृत में सिर्फ इन दो को ही लागू होती है। एक है जैनों के तीर्थंकर और दूसरे रामायण के अधिष्ठाता आर्य हनुमान! एक हैं वीर-परंपरा के, दूसरे हैं संत-परंपरा के, परंतु दोनों हैं भक्त-शिरोमणि। अब क्या 'वीर' शब्द को हम कमजोर समझेंगे? इसलिए 'कमांड' आदि शब्दों से आपको घबड़ाना नहीं चाहिए। जो शब्दों से डरेंगे, वे निर्भयता खोयेंगे। तो आपको अपनी निर्भयता का व्रत कायम रखना चाहिए और शब्दों से डरना नहीं चाहिए।

यह 'इंपर्सनल' (अवैयक्तिक) है सब

दूसरी बात यह है कि बाबा जब बोलता है, तो 'इंपर्सनल' (अवैयक्तिक) बोलता है, पर्सनल (वैयक्तिक) भाषा तो कभी बोलता नहीं है। ध्यान में

रखो कि यह पैदल यात्रा छोड़नेवाला नहीं है। अब मान लीजिये कि किसी जगह कुछ भयानक घटना हुई, तब बाबा से पूछने पर वह कहेगा कि सत्याग्रह की परंपरा में उपवासादि आता है, क्योंकि उसका संबंध अपनी आत्मा में पहुंचता है। व्यापक आत्मा में वह बात आती है, तो पाप की जिम्मेदारी अपने पर आती है, इसलिए पापक्षालन करना पड़ता है। अतः अंतिम अनशन आदि बातें हिंसा के खिलाफ कहीं-न-कहीं खड़ी हो सकती हैं। अहिंसाशास्त्र में इन चीजों का सुव्यवस्थित स्थान है और वह बाबा को मंजूर है। लेकिन बाबा की अपनी वृत्ति यह है कि दुनिया में कितनी भी कत्लें चलें, कुछ भी चलें, तो भी बाबा दिन में तीन दफा बराबर खाता रहेगा। किसी घटना का कोई असर बाबा के अनशन पर नहीं होगा। यह इसलिए कि बाबा ने मुख्यतः सीखा है वेदांत और उसके बाद अहिंसा। गांधीजी ने अहिंसा सिखाई, तो बाद में सिखाई, उसके पहले वह वेदांत सीखा हुआ था। बाबा के मन में यह बात है कि शरीर कभी तो गिरेगा ही, तो उसमें कोई हर्ज नहीं है, इसलिए उसका शोक आदि उसे बिल्कुल नहीं होगा। फिर बाबा से पूछा जाय कि कमांड हाथ में लेने का अर्थ क्या, तो वह कहेगा कि उसका अर्थ है किसी मौके पर अंतिम अनशन का जिम्मा उठाना। क्योंकि उस परिस्थिति में अंतिम अनशन के बिना कोई चारा नहीं, ऐसा मौका उपस्थित हो सकता है। बाबा का कुल स्वभाव ऐसा ही है कि किसी भी पाप की जिम्मेदारी अपने पर लेने की उसकी वृत्ति नहीं है। फिर भी बाबा जिम्मेदारी लेता है, क्योंकि परिस्थिति में कुछ गंभीरता है, जिससे अपने निज स्वभाव के विरुद्ध कुछ जिम्मेदारी उठाने के लिए वह 'इंपर्सनली' (अवैयक्तिक रूप से) तैयार हो रहा है।

मर्यादा

एक बात स्पष्ट है कि जहां हम अनुशासन की बात कर रहे हैं, वहां वह केवल शांति-सेना तक ही सीमित है। उसमें किसीको अगर कोई संदेह है, तो वह नहीं रखना चाहिए।

"एक मुख्य कमांडर होता है, तो बीच में और होंगे क्या ?" इस सवाल

का उत्तर है । 'जी हां, होंगे और हो भी चुके हैं । केरल में आठ-नौ मनष्यों ने हमारी उपस्थिति में सभा के सामने खड़े होकर प्रतिज्ञा ली कि अनुशासन मानने की बात के साथ हम शांति-सेना में दाखिल होते हैं । इस तरह वहां पर केलप्पन् को नेता के तौर पर माना गया, जहां तक केरल का सवाल है । तो जैसे भारतीय नेता की बात हो चुकी है वैसे एक उपनेता भी हो चुके हैं । वह कोई आगे की बात नहीं रही है । यह अपनी-अपनी टोली बनाकर मार खाने के लिए खड़े होने की बात चल पड़ी है । अहिंसा के कमांड में अपनी आत्माहुति के सिवाय और कोई कमांड आती ही नहीं । बाकी तो छोटी-छोटी बातें होती हैं, परंतु वे भी जरूरी होती हैं, इसीलिए 'कमांड' शब्द लागू होता है । जो भी छोटा या बड़ा कमांडर होगा, उसका प्रथम कार्य है, अपना बलिदान करना ।

इसके अलावा भी जो कमांड करनी है, उसका अब विवरण मैं करूंगा ।

कमांड का प्रश्न

हिंसा की रक्षण-शक्ति किस चीज में है, यह आज हमारे सामने सवाल है । वह शक्ति इसमें है कि किसी एक पॉइंट (मुद्दे) पर खतरा है, तो हिंसा-शक्ति के पास ऐसा संगठन मौजूद है कि वह समूह को खड़ा कर सकती है । दो-चार, दस हजार का समूह एकदम खड़ा हो सकता है । अब अहिंसा में अगर वह शक्ति न हो, तो क्या होगा ? कल दादा (धर्माधिकारी) से सहज बात हो रही थी । उन्होंने पूछा, "क्या आज्ञा से बलिदान देने की तैयारी हो सकती है ? और अगर हो सकती है, ऐसा मान भी लिया, तो क्या आज्ञा ऐसी समर्थ हो सकती है कि मनुष्य उसके सामने अपना प्राण तुच्छ समझकर अपना बलिदान करने के लिए तैयार होगा ? लेकिन क्या उस बलिदान में उसका हृदय प्रेम से भरा हुआ रहेगा ?" कल के व्याख्यान में हमने मामूली प्रेम की अपेक्षा नहीं की थी, बल्कि मातृवात्सल्य की अपेक्षा की थी । भाई भाई का बचाव करता है, मित्र मित्र का करता है, परंतु हमने माता के प्रेम की अपेक्षा की । हमने उसके लिए जो मिसाल दी थी,

उसमें कहा था कि सामनेवाला हमारे सिर पर प्रहार कर रहा हो, तो हमें यह चिंता नहीं रहेगी कि हमारा सिर कैसे बचे, परंतु यही चिंता रहेगी कि मारनेवाले के हाथ को तकलीफ न हो। कहने में तो हमने यहां तक कह दिया है, तो सवाल उठाया गया कि क्या यह सारा आज्ञा से हो सकता है ? हमारा जवाब यह है कि स्वतंत्र चिंतन से यह होने का जितना संभव है, उससे लेश-मात्र कम संभव आज्ञा से होने में नहीं है। जो कार्य रामजी ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, उतना ही प्राणवान कार्य हनुमान कर सकते हैं, श्रद्धापूर्वक। हनुमान से वनस्पति लाने के लिए कहा गया, तो वह पहाड़ ही उठा लाया और कहा कि आप ही इस पर से चुन लीजिये कि कौनसी वनस्पति चाहिए। फिर बाद में मैं पहाड़ को अपनी जगह रख दूंगा, क्योंकि ज्ञान तो मेरे पास है नहीं। उसने संजीवनी पर्वत ही लाकर खड़ा किया था ! उसकी श्रद्धा इतनी अपूर्व थी कि उसके कारण रामायण में जितनी महिमा राम की है, उतनी ही महिमा दास की--हनुमान की है।

बापू के साथ की चर्चा

इस विषय पर गांधीजी के साथ हमारी जो चर्चा हुई थी, उसका थोड़ा जिक्र मैं आपके सामने करूंगा। १९४२ के आंदोलन के पहले की बात है। गांधीजी का खयाल था कि इस वक्त जेल में जायंगे, तो वहां प्रवेश करते ही फाका (उपवास) शुरू करेंगे। जेल में ऐसे ही पड़े नहीं रहेंगे। जेल में पड़े रहने की बात अब पुरानी हो गई। जहां हम अंग्रेजों का राज्य ही मान्य नहीं करते हैं, और उनसे कहते हैं कि यहां से हट जाओ, उस हालत में हम जेल में जाते ही फाका करेंगे। यह सब उनके मन में था। यह कौन कर सकता है ? बलिदान की तैयारी कोई बड़ी बात नहीं है, परंतु जिसके हृदय में प्रेम भरा हो, वही बलिदान कर सकता है। तो प्रेमयुक्त बलिदान कौन कर सकता है, यह सवाल था। कोई व्यक्ति कर भी सकता हो, परंतु क्या उस चाज का आंदोलन हो सकता है ? उसका एक सिलसिला बन सकता है ? क्या प्रेमपूर्वक फाका करके मर जाने का जन-आंदोलन हो सकता है ? जैसे सेना में लाखों लोग

दाखिल होते हैं, क्या वैसे इसमें हो सकता है ? गांधीजी समझते थे कि यह हो सकता है और इसका आरंभ अपने से ही होगा। ऐसा नहीं कि वही हो सकता था, दूसरी बात भी हो सकती थी। प्रथम ज्ञान तो यही है कि उपवास का आरंभ बापू ही करेंगे। इससे कुछ लोग घबड़ा गए थे, जो लाजमी ही था। सब लोग चाहते थे कि किसी-न-किसी तरह यह टले, कम-से-कम बापू उपवास न करें। उपवास का सिलसिला नहीं बन सकता है। उपवास की सेना नहीं बन सकती है, ऐसे काम आज्ञा से नहीं हो सकते हैं, ऐसा विचार बापू के इर्द-गिर्द के लोगों का था। उसमें केवल बापू को बचाने की कोशिश नहीं थी, बल्कि वह विचार ही था। ऐसे समय बापू ने मुझे बुलाया और मेरे सामने अपनी बात रखी कि मैं इस तरह करना चाहता हूं। सवाल यह था कि जो काम ज्ञानी मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर सकता है, वही काम क्या अनुयायी श्रद्धा से कर सकते हैं ? क्या इस प्रकार हो सकता है ? मैंने जवाब दिया कि जी हां, हो सकता है। और तब मैंने मिसाल दी थी कि जो काम रामजी ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, वही काम हनुमान श्रद्धापूर्वक कर सकते हैं। बस, बात वहीं खत्म हुई। फिर ज्यादा सोचने का रहा नहीं। हम वहां से चले गए। उसके बाद नौ अगस्त का दिन आया। बापू गिरफ्तार हुए। बापू से हमारी उतनी ही बात हुई थी। उनका और हमारा कोई वचन-बंधन नहीं हुआ था कि बापू वह करेंगे, तो हमें अमुक करना चाहिए। लेकिन जब बापू गिरफ्तार हुए, तो उस समय उनके मन में यह था कि अभी उपवास नहीं करेंगे। उसका मौका आने पर करेंगे। पहले सरकार के साथ कुछ पत्र-व्यवहार वग़ैरा होगा। पर हमारे साथ उनकी बात हुई थी कि इस वक्त जेल में नहीं रहेंगें। जायंगे, तो शुरूआत ही उपवास के साथ करेंगें, इत्यादि। परंतु बापू का विश्वास था कि सरकार उन्हें मौका देगी।······सत्याग्रह-शक्ति कहां से आती है, यह देखिये। बापू ने सोचा कि अभी मेरी सरकार से बातचीत नहीं हुई है, तो सरकार १५ दिन मौका जरूर देगी। यद्यपि कुछ लोग उससे उल्टा मानते थे, फिर

भी बापू श्रद्धा से मानते थे कि उन्हें मौका दिया जायगा, लेकिन वह पकड़े गये। उन्हें मौका नहीं दिया गया। उस वक्त प्यारेलाल बाहर थे। तो बापू ने प्यारेलाल से कहा कि विनोबा को इत्तला दो कि जेल में जाते ही उपवास नहीं करना है। उन्होंने मान ही लिया था कि जब यह शख्स मेरे साथ चर्चा करके गया है, तो वह उपवास जरूर करेगा। उन्होंने कोई कमांड (आदेश) नहीं दिया था। परंतु कमांड से भी ज्यादा दिया जा सकता था, वह दिया था। वह चीज कमांड से कम की नहीं थी। जब उन्होंने ऐसी सलाह पूछी थी कि क्या यह हो सकता है और हमने कहा था कि हां, हो सकता है। उसी दिन हम भी जेल में गए। दादा साथ थे। जेल में जाते ही हमने जेलर से कहा, "तुम तो मुझे जानते हो कि मैं जेल के हर नियम का बारीकी से परिपालन करनेवाला हूं और दूसरों से करवानेवाला भी हूं। तुम यह भी जानते हो कि मेरे जेल में आने पर तुम्हारा फंक्शन (काम) मिट जाता है और तुम्हारा कुल काम मैं ही करता हूं। परंतु इस वक्त वह नहीं होनेवाला है। मैंने सुबह तो खा लिया था, इसलिए दोपहर का सवाल नहीं, पर शाम को नहीं खाऊंगा और कब तक नहीं खाऊंगा, मैं नहीं जानता हूं। यह आपकी डिसिप्लिन (अनुशासन) तोड़ने के वास्ते जरा भी नहीं है। मेरी एक डिसिप्लिन है, उसे मानने के वास्ते है।" यों कहकर मैं अंदर चला गया। दो घंटे के बाद बुलाया गया। बापू ने प्यारेलाल से जो कहा था, वह संदेश उन्होंने किशोरलालभाई के पास भेजा, क्योंकि वह वर्धा में थे। किशोरलालभाई ने वर्धा के डी० सी० से पूछा। डी०सी० ने गवर्नर से पूछा कि क्या इस तरह सूचना दे सकते हैं, तो गवर्नर ने कहा कि हां, दे सकते हैं, बशर्ते कि एक शब्द भी अधिक न बोला जाय, मुलाकात वगैरा कुछ नहीं, सिर्फ इतना ही कहा जाय कि बापू का आदेश है कि उपवास नहीं करना। डी० सी० ने कहा कि ठीक है, मैं उन्हें कहूंगा। किशोरलालभाई ने कहा कि इस तरह आपके समझाने से विनोबा नहीं मानेंगे, इसलिए हममें से किसीको जाना होगा। तो फिर वालुंजकर आये और उन्होंने बापू का आदेश सुनाया; तो मेरा वह उपवास नहीं हुआ। फिर बाद

में जब बापू ने उपवास शुरू किया, तब मैंने भी शुरू किया। पर मैं कहना चाहता हूं, अपने हृदय की अनुभूति कि बापू उपवास करते, तो जितने आनंद से करते, मेरा दावा है कि मेरे उपवास में उससे लेशमात्र कम आनंद नहीं था। इतने लंबे उपवास मैंने कभी नहीं किये थे। सात दिन से ज्यादा उपवास मैंने नहीं किये थे, परंतु वेलूर जेल में जब उपवास शुरू हुए, तो दो-चार दिन यों ही बीत गए और उसके बाद तो भास ही नहीं हुआ कि उपवास चल रहे हैं। रात में नींद गहरी आती थी और दिन में अध्ययन चलता था। डाक्टर महोदय (वर्धा के) साथ थे। वह कुछ मालिश वगैरा करते थे, अपना जादू करते थे, तो उतना मैं करने देता था, लेकिन चित्त पर ऐसा असर था कि बस आनंद-ही-आनंद है और कुछ है नहीं। ज्ञान तो मेरे पास नहीं है, आप जानते हैं कि ज्ञान तो उनके पास था। परंतु श्रद्धा से मैंने माना था। मैंने उसे हुक्म समझा था। चाहे आप वह शब्द इस्तेमाल करें या न करें, उससे उसका पूरा अर्थ प्रकट नहीं होता है। परंतु मैंने यह इसलिए कहा कि श्रद्धा से आज्ञा समझकर, अत्यंत आनंदपूर्वक और प्रेमपूर्वक अपना बलिदान किया जा सकता है, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। अगर मुझे संदेह है, तो यह है कि कोई ज्ञानपूर्वक काम करे, तो उसके ज्ञान में संशय आ सकता है। मुझे आदेश देनेवाले बापू के याने किसी ज्ञानी के चित्त में कोई नुक्स हो ऐसा उन्हें लग सकता है, परंतु श्रद्धावाले के चित्त में कोई संदेह पैदा नहीं हो सकता है। इसलिए इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि आज्ञा से यह काम किया जा सकता है। अब आज्ञा कौन करे, किसे करे, ये सवाल पैदा हो सकते हैं।

"इसमें विचार-शासन, स्वतंत्रता आदि पर आक्रमण होगा। वह पहले शांति-सेना तक ही सीमित रहेगा, परंतु कल दूसरे क्षेत्र में भी लागू हो सकता है।" इस तरह का डर प्रकट किया गया है। परंतु जीवन में इस तरह डरते-डरते काम करेंगे, तो कैसे चलेगा? भगवान ने गीता में कहा है कि 'सहजं कर्म कौंतेय सदोपमपि न त्यजेत्। सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।' (१८ : ४८)। सहज प्राप्त कर्म सदोष हों, तो भी

करना चाहिए, क्योंकि अग्नि के साथ धुआं होता ही है। हर किसी आरंभ में खतरा है। सिर्फ एक गुजराती शब्द खतरे से खाली है। गुजराती में प्रयोग को ही 'अखतरा' कहते हैं। उसे छोड़कर बाकी जो भी प्रयोग होंगे, उनमें खतरा जरूर आयगा। विचार में स्पष्टता होनी चाहिए कि ये जो आदेश इत्यादि दिये जाते हैं, वे कहां होंगे, उनका क्षेत्र क्या होगा। अगर मैं किसीसे कहूं कि कुएं में कूद कर मर जाओ, तो कोई श्रद्धा से इस आज्ञा का पालन कर सकता है। परंतु हम किसीसे यह नहीं कह सकते हैं कि फलानी चीज को ज्ञान मानो, ज्ञान न हो तो भी। ज्ञान के बारे में आज्ञा हो ही नहीं सकती है। याने वह असंभव वस्तु है। फिर भी लोग कुछ करना चाहते हैं, धर्मांतर आदि जबरदस्ती से करते हैं।

जिस इस्लाम के लिए इतिहास में यह जाहिर है कि उसने करोड़ों का जबरदस्ती से परिवर्तन किया, उस इस्लाम ने कहा कि—'ला इकराह फिद्दीन'—धर्म के बारे में कभी जबरदस्ती नहीं हो सकती है। जो मनुष्य कोई चीज नहीं समझ रहा है, उसे अगर कोई ऐसी आज्ञा दे कि अरे तू समझ कि मैंने आज्ञा दी है, और फिर भी नहीं समझता है? तो वह कहेगा कि आज्ञा से समझने की बात होती, तो तुम्हारे लिए मुझे इतना आदर है कि मैं वह बात फौरन समझ जाता! पर अब नहीं समझ रहा हूं!—तो विचार के क्षेत्र में परिपूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह सर्वोदय-समाज का बहुत बड़ा लक्षण है। उसमें हम किसी तरह से कसर नहीं आने देंगे, उसमें कसर आयगी ही नहीं। कहीं आयगी, तो उसका मतलब होगा कि कोई एकाध मनुष्य मूरख साबित होगा। उससे सर्वोदय-समाज के विचार में कोई फर्क नहीं आयगा।

अहिंसा रक्षक या मधुर मात्र?

तो मैं कहता था कि एक जगह एकत्र शक्ति लाने की जो सहूलियत हिंसा में है, वह अहिंसा में न हो, तो आज अहिंसा काम नहीं करेगी। अंतिम हालत में वैसा प्रसंग न भी आये, जब मानसिक, भौतिक और सामाजिक कार्य पूरा हो चुका होगा। उस हालत में यह सवाल ही नहीं आयगा।

परंतु आज, जबकि समस्याएं उपस्थित हैं, तो उस हालत में हिंसक लोग एकदम हजारों, लाखों-लोगों को एकत्र खड़े कर सकें और हम उस तरह लाखों को एकत्र न ला सकें, तो अहिंसा रक्षणकारिणी नहीं होगी, जीवन में थोड़ा-सा माधुर्य लानेवाली मात्र होगी।

एक सवाल यह पूछा गया है कि पंचविध निष्ठावाले लोकसेवक क्या काफी नहीं हैं ? उनके होते हुए शांति-सेना की क्या जरूरत है ? याने उसमें शांति-सेना के मूल विचार पर ही प्रहार है। इस पर मुझे यह कहना है कि कई मौके ऐसे होते हैं कि वहां अगर 'डिले' (विलंब) हो गया, तो काम नहीं होता है। नेपोलियन से जब पूछा गया कि वॉटरलू की लड़ाई में तुम्हारी पराजय किस कारण से हुई, तो उसने कहा कि मार्शल ने सात मिनट देर की, इसलिए मैंने वॉटरलू की लड़ाई खोई। पहले से हमारी ऐसी व्यवस्था हुई थी कि फलानी जगह फलानी सेना फलाने वक्त आयगी। पर उसके आने में सात मिनट देर हुई। खैर ! इतना 'लिटरल' (शाब्दिक) अर्थ लेने की जरूरत नहीं है। परंतु ऐसे मौके आते हैं, तो थोड़े ही समय में सेना भेजने की जरूरत होती है। इसलिए 'कमांड' शब्द इस्तेमाल किया गया। अब उसका जो सौम्य-से-सौम्य अर्थ आप ले सकते हैं, वह लें।

(गुजरात के कार्यकर्ताओं के साथ, मैसूर, २७-९-५७)

: ४ :

शांति-सेना : प्रश्नोत्तर

(विनोबा)

प्रश्न : आप नये-नये कार्यक्रम लेते हैं और हम पुराने कार्यक्रमों को ही पूरी तरह से अमल में नहीं ला सकते हैं। तो यह सब बालू का महल कहां तक टिकेगा ?

उत्तर : मनुष्य में चित्त का एक अंश है और दूसरा अंश है, शरीर का। वह जो शरीर का अंश है, वह जड़ है। इसलिए वह प्रति-क्षण सुस्ताता

जाता है, वह उसका लक्षण ही है। इसीलिए सतत नई-नई चालना देते रहना पड़ता है और हमें एक कदम आगे ले जानेवाला विचार जब सामने आता है, तब भान होता है कि हम कितने पिछड़े हुए हैं। तब मनुष्य जरा जोर लगाकर बचा हुआ कार्यक्रम पूरा कर लेता है। अगर आगे के कार्य-क्रम का दर्शन न हो, तो पुराना कार्यक्रम ही 'रोज़े क़यामत' तक जारी रहेगा। परंतु आगे का कार्यक्र उमपस्थित हुआ कि पुराना कार्यक्रम पूरा करके उसे छोड़ना ही पड़ता है, इसलिए गति देने के लिए यह जरूरी है कि उत्तरोत्तर दर्शन बढ़ता जाय।

एक शिखर पर चढ़ते हैं, तो दूसरे का दर्शन होता है। तो नये कार्य-क्रमों से पुराने कार्यक्रमों को पूर्ण किया जाता है और गति मिलती है। अलावा इसके पुराने कार्यक्रमों को नया विशाल अर्थ प्राप्त होता है। इस-लिए पुराना कार्यक्रम हमने छोड़ा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि यह शख्स एक-एक कार्यक्रम छोड़ता जाता है—भूदान छोड़ा, ग्रामदान निकाला, अब ग्रामदान छोड़कर शांति-सेना की बात निकाली है! इसे पुरानी बातें छोड़ने की आदत है। बात यह है कि यह विज्ञान का जमाना है और वह किसी आलसी के लिए रुकनेवाला नहीं है। अगर हम शांति-सेना की बात नहीं करते, तो ग्रामराज्य, जो आगे बननेवाला है, वह खतरे में है। मद्रास राज्य में तिरुमंगलम् तालुका हमने तालुकादान के लिए चुना और उसीके नजदीक के जिले में मार-काट की घटनाएं हो रही हैं, जिन्होंने सारे भारत का ध्यान खींचा है। कुछ घटनाएं अन्यत्र भी हो रही हैं। अब आप सोच सकते हैं कि काल कितने वेग से दौड़ रहा है। इसलिए विचारों में आगे बढ़ना ही पड़ता है, तब ताज़गी आती है, नये-नये अर्थ ध्यान में आते हैं। यह बहुत जरूरी प्रक्रिया है।

प्रश्न : आपने सुप्रीम कमांड की बात जिस तरह समझाई, उसका अर्थ होता है, आत्म-समर्पण करना। आदेश देने के इस प्रकार में क्या प्रेम का अभाव नहीं होगा? क्या उससे प्रेरणा मिलेगी?

उत्तर : आपको समझना चाहिए कि हमने मामूली कमांड की बात

नहीं की सुप्रीम कमांड की बात की है। याने वह छोटी-छोटी चीजों में दखल देनेवाली नहीं है! वह जितनी कम दखल देगी, उतनी ज्यादा सुप्रीम होगी। इसलिए सुप्रीम कमांड का डर रखने का कोई कारण नहीं है, बल्कि हम अपने मन को अंतिम बलिदान के लिए तैयार रखें। गुरु की तलाश याने शिष्यत्व की प्राप्ति का प्रयत्न। सुप्रीम कमांड याने आखिर के प्रयत्न के लिए अपने मन को तैयार रखना। इसके सिवाय उसका ज्यादा अर्थ मत करो।

प्रश्न : जिस शासनमुक्त समाज का आदर्श हम मानते हैं, उसमें अंततोगत्वा न आदेश रहेगा, न कोई आदेशक ही। उसमें हर व्यक्ति अंतः-प्रेरणा से तथा निजी अभिक्रम से व्यवहार करेगा। ऐसी अवस्था में शांति-सैनिकों के गुणों से युक्त अनेक व्यक्ति समाज में रहेंगे, लेकिन शांति-सेना जैसा कोई संगठना, फिर वह कितना भी लचीला (इलॅस्टिक) क्यों न हो, नहीं रहेगा, ऐसा मुझे लगता है। संक्रमण-अवस्था में उसको मान सकते हैं।

उत्तर : ये जो एटम और हाइड्रोजन बम वगैरा तैयार हुए हैं, उनके परिणामस्वरूप शासनमुक्त समाज जल्दी आने का संभव दीखता है, जिससे समाज को ही मुक्ति मिल जायगी और किसी मसले पर सोचने का कोई कार्यक्रम नहीं रहेगा। इसलिए अंततोगत्वा क्या होगा, इस बारे में मैं कभी नहीं सोचता हूं। संक्रमण-अवस्था में क्या करना है, यह भी नहीं सोचता हूं, क्योंकि संक्रमणावस्था एक सनातन अवस्था है। वह भूतकाल और भविष्य के बीच का काल है। हर कोई काल संक्रमण-काल है। इसलिए मैं उस बारे में भी नहीं सोचता। मैं एक प्रचलित परिस्थिति, मौजूदा आवश्यकता के विषय में, जो आज साक्षात उपस्थित है, सोचता हूं। भूदान-यज्ञ किसी सूरत से शुरू नहीं होता, अगर तेलंगाना की वह घटना नहीं बनती, उस दिन जमीन की मांग नहीं होती। कार्यक्रम परिस्थिति के अनुसार ही प्रकट होता है और परिस्थिति के अनुसार ही उसे बदल सकते हैं। आज हिंदुस्तान की परिस्थिति शांति-सेना की मांग करती है। उसमें से यह पैदा हुई है। अगर वह मांग पूरी हो जाय, शांति स्थापित करने

का प्रसंग न आये, तो वह शांति-सेना सेवा-सेना होगी। फिर उसके बाद सेवा के भी प्रसंग नहीं आयंगे। सब लोग अपना-अपना काम कर लेंगे, तो सेना की जरूरत नहीं रहेगी। एकरस समाज, सर्वोदय-समाज बन जायगा। धीरे-धीरे एकरसता, एकरूपता आती जायगी और विविध भेद लीन होते जायंगे। उस अंतिम अवस्था में तो जो किसान होगा, वही तत्वज्ञानी होगा, वही शांति-सैनिक होगा, वही सत्याग्रही होगा। उस एक में सारे समाते जायंगे। ऐसा वह परिपूर्ण होगा। परंतु आज की अवस्था में वह नहीं है। आज हमारा ग्रामदान, ग्रामराज्य कुल-का-कुल खतरे में है, अगर सारे भारत में, जिसे हम अहिंसा कहते हैं—अंग्रेजी 'पीस' नहीं, बल्कि अहिंसा—उसका वातावरण हम पैदा न कर सके और न ऐसी स्थिति जिससे उसका नियंत्रण आगे भी बना रहे। सिर्फ यही न हो कि चंद लोग कुछ काम कर रहे हैं, कुछ माधुर्य पैदा कर रहे हैं।

खारे सागर में शहद के बिंदु डालकर माधुर्य लाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसी कोशिश कोई करेगा तो वह 'चेष्टा'[1] (मजाक) ही होगी। इसलिए अहिंसा का काबू निर्माण होना चाहिए। सत्वगुण की पटरी चाहिए। फिर उस पर रजोगुण का इंजन जोरों से दौड़ने दो, उसके साथ तमोगुण के डिब्बे भी लगने दो। रजोगुण, तमोगुण को भी हम चाहते हैं। परंतु हम चाहते हैं कि पहले पटरी तो सत्वगुण की हो। चंद लोग अहिंसा का काम कर रहे हैं। इतने से अब काम नहीं चलेगा। हरएक के मन में अहिंसा का भाव आने में देर भले ही हो, परंतु आज देश पर अहिंसा का प्रभाव पड़ना चाहिए। इसलिए शांति-सेना का कार्यक्रम बहुत दूर का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि आज का है। आज मैंने बंबई के कार्यकर्ताओं से कहा कि बंबई में 'सहस्रनाम' सुनाई देना चाहिए, याने कम-से-कम हजार सेवक वहां निकलने चाहिए, जिससे कि बंबई पर अहिंसा का प्रभाव रहेगा। फिर

---

१. यहां 'चेष्टा' शब्द खिल्ली उड़ाने के अर्थ में प्रयुक्त है, जो मराठी में चलता है।

बाकी की कई चीजें चलती रहेंगी।. दूसरे मसलों के लिए जो आंदोलन होते हैं, वे चलेंगे। परंतु उन आंदोलनों से समाज को खतरा पैदा नहीं होगा, बल्कि लाभ होगा।

प्रश्न : सत्याग्रही सेवकों की मौजूदगी में 'शांति-सेना' निर्माण करने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हो रही है ?

उत्तर : सत्याग्रही सेवकों की मौजूदगी अभी मुझे प्रतीत नहीं हो रही है। 'शांति-सेना' सत्याग्रही सेवकों के कार्य का एक विभाग-मात्र है। सत्याग्रही सेवकों के कर्तव्यों में से जो सबसे बड़ा कर्त्तव्य 'शांति-सेना' का कार्य है, उस पर सबका ध्यान हम खींचना चाहते हैं। किसी बड़े ग्रंथ के अनेक प्रकरण होते हैं, परंतु एक प्रकरण की तरफ हम आपका ध्यान खींचना चाहते हैं, जो आज जरूरी है। सत्याग्रही सेवक आज थोड़े हैं। हम चाहते हैं कि उनकी विचार-सृष्टि में एक वस्तु की ओर फौरन ध्यान खींचा जाय। आज समाज में जो अंधाधुध चल रही है, उसके बीच जाकर खड़े रहने की जिम्मेदारी हमारी है।

प्रश्न : इमर्जेंसी (संकट) के समय सत्याग्रही सेवकों पर, 'शांति-सैनिक' बनने की पूरी जिम्मेवारी नहीं सौंपी जा सकती। यह 'डुप्लीकेशन' (दोहरा काम) किस कारण किया जा रहा है ?

उत्तर : इस सवाल पर सोचना चाहिए कि शांति की जिम्मेदारी किस पर कौन डालेगा ? जो शांति-स्थापना की जिम्मेदारी उठायगा, उसी पर उसका जिम्मा डाला जायगा, दूसरे पर नहीं। वह शख्स पहले से ही शांति-सेना का सैनिक हो, पंचविध निष्ठा माननेवाला हो, यह जरूरी नहीं है। एक पापी, पतित, दुराचारी भी सिन्सीयर (ईमानदार) हो सकता है। वह सिन्सीयर्ली (ईमानदारी से) अपने पाप में बरतता होगा। कहीं वैमनस्य पैदा हुआ, तो उसके अंतरात्मा में चिनगारी पैदा हो सकती है और शांति-स्थापना के लिए वह अपना बलिदान दे सकता है। उसको बलिदान करने का अधिकार है। संभव है कि उस बलिदान से उसी एक क्षण में वह समाज में शांति की स्थापना कर सके और अपने पूर्व पापों का दहन कर सके।

यह सब हो सकता है। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि शांति की स्थापना शांति-सनिकों के जरिये ही होगी। परंतु यह योजना नहीं हो सकती है कि शांति-सेना के लिए पापी पुरुष ही नाम दें, ताकि उनके पाप-दहन की योजना की जाय। अंतिम क्षण कुछ भी हो सकता है, परंतु योजना बनाते समय शास्त्रीय योजना ही बनानी पड़ती है। उसमें यह बात होगी कि शांति-सैनिक को मौके पर निर्देश होने पर अपना काम, अपनी आसक्ति की जगह छोड़कर, छलांग मारकर वहां जाना चाहिए, जहां जाने के लिए कहा गया हो। विशेष प्रसंग में ही यह प्रसंग आयगा। सामान्यतया शांति-सैनिक अपने स्थान पर काम करता रहेगा। उसी रास्ते से जाना है, यह हम बताना चाहते हैं। हम एक रास्ता बना रहे हैं। गीता में कहा है कि पुण्यवान पुरुष चार प्रकार की भक्ति करते हैं :

'चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।' (७-१५)

लेकिन सवाल निकलता है कि क्या भक्ति पुण्यवानों का ही ठेका है? भगवान ने तो कहा है कि कोई अत्यंत दुराचारी हो, तो भी यदि वह मेरी अनन्य भक्ति करे, तो परमेश्वर का प्रिय हो सकता है और वह भी काम कर सकता है :

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।'' (९-३०)

परंत नियम यह है कि भक्त सदाचारी होता है, यद्यपि अत्यंत दुराचारी भी भक्त बन सकता है। सवाल यह है कि जहां भक्ति है, वहां काम होगा। वह भक्ति किसीके भी दिल में किसी भी क्षण पैदा हो सकती है। वह भी संभव है कि जिसने अपने को शांति-सेना के लिए तैयार किया हो, वह ऐन मौके पर झिझक महसूस करे—परंतु आज शांति-सेना की योजना की एक धर्म-विचार के तौर पर जरूरत है।

प्रश्न : शांति-सेना की घोषणा के बाद यहां, कार्यकर्ताओं में एक प्रकार का कन्फ्युजन (भ्रम) निर्माण हो गया है। आज के आपके स्पष्टीकरण के बाद भी वह कायम है, ऐसा मुझे लगता है।

उत्तर : कन्फ्युज़न (भ्रम) निर्माण नहीं हुआ है, भ्रम प्रकट हुआ है। और उसका प्रकट होना अच्छा है, क्योंकि उसका निरसन का मार्ग खुला हुआ है। हमारा मन बिल्कुल निःशंक है, स्पष्ट है। परंतु लोगों का बहुत सारा चिंतन 'नेब्युलस्' होता है, अस्पष्ट होता है। वह अस्पष्टता नवनिर्मित नहीं होती है, सिर्फ प्रकाशित होती है। वैसे भ्रम होने का कोई कारण तो नहीं है, परंतु जो कारण अंदर पड़े हैं, उनके कारण वह होता है।

लोकशाही का दावा करनेवाली सरकार सत्ता के जरिये शांति-स्थापना करने में समर्थ हो ही नहीं सकती है। मान लीजिये कि हिंदुस्तान में दंग करनेवाले लोगों की मेजॉरिटी ो जाय, तो लोकशाही क्या करेगी ? लोक-शाही में मेजॉरिटी के आधार पर चुनाव होता है, इसलिए लोकशाही का अर्थ है, मेजॉरिटी के आधार पर खड़ी हुई सरकार। वह 'ऍवरेज' (औसत) सरकार होती है। पर बुराई का प्रतिकार और उसका निर्मूलन 'ऍवरेज' (औसत) से नहीं होता है। बुराई का प्रतिकार अच्छाई से होता है।

देश में जो गोलियां चलती हैं, उस पर बहुत सारे लोग टीका करते हैं, हम भी टीका करते हैं। परंतु एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि लोगों का पत्थर फेंकना और लोकशाही पद्धति से बनी हुई सरकार का गोली चलाना एक ही कोटि में नहीं है, वे दोनों भिन्न-भिन्न हैं। सरकार की ओर से जो गोलियां चलती हैं, उसके पीछे एक सैंक्शन (सम्मति) है, उन्हें एक आज्ञा हुई है। पर जो पत्थर फेंके जाते हैं, उसके पीछे सैंक्शन (सम्मति) नहीं है, आज्ञा नहीं है। दंड का अधिकार हमने सरकार के हाथ में दिया है। उसमें इतनी ही चर्चा हो सकती है कि सरकार उसका उचित उपयोग कर रही है या अनुचित, गोलियां जो चलीं, वे प्रमाण में ज्यादा थीं या कम। परंतु पत्थर फेंकनेवालों के बारे में यह चर्चा नहीं हो सकती है कि पत्थर फेंकना उचित था या अनुचित, इतनी मात्रा में फेंकना योग्य है या नहीं है, आदि। उसके बारे में यही कहा जा सकता है कि पत्थर फेंकना गलत है। आप लोगों ने बाकायदा गोलियां चलाने की सत्ता सरकार के हाथ में दी है। उसके पीछे आपकी, हमारी और सबकी सम्मति है। उस बारे में इतनी ही

चर्चा हो सकती है कि गोलियां मौके पर चलाईं या बेमौके पर चलाईं। गोली चलाना ही गलत है, यह बात तब तक नहीं हो सकेगी, जब तक जनता द्वारा सरकार को फौज खत्म करने की आज्ञा ही न दी जाय। आज पार्लमेंट में सरकार की तरफ से जो 'बिल' आते हैं, उनमें सुझाव पेश किये जाते हैं कि फलाना खर्च कम कर दिया जाय। परंतु फौज के लिए सरकार की तरफ से जो रकम मांगी जाती है, उसके बारे में कोई ऐसे सुझाव पेश नहीं किये जाते हैं। वे मांगें एक क्षण में मंजूर होती हैं ! सरकार से सिर्फ इतना ही पूछा जाता है कि सेना पर काफी खर्च कर रहे हो या कम कर रहे हो ? हमारे बचाव की ठीक व्यवस्था है या नहीं ? आधुनिकतम शस्त्रास्त्र आपने खरीदे हैं या पुराने गए-बीते शस्त्रों से ही चला रहे हो ? सरकार सेना पर जो खर्च करती है, उसके खिलाफ किसीकी कोई शिकायत नहीं होती है। इसलिए आप किस आधार से कहते हैं कि गोली चलाना गलत है ? गोली चलाना आज की हिंदुस्तान की समाज-रचना में मान्य की हुई बात है, परंतु पत्थर फेंकना मान्य नहीं है। ये दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। यह ठीक है कि पत्थर फेंकने से सिर्फ सिर फूटते हैं, प्राण नहीं जाता है और गोली से प्राण जाता है ! लेकिन वह बंदूक अहिंसा के नजदीक है और ये पत्थर अहिंसा के नजदीक नहीं हैं।

तो सरकार औसत सरकार होती है, इसलिए वह अशांति के तत्व के निरसन के लायक नहीं होती। उससे वह काम नहीं बनेगा। फिर वह काम किससे बनेगा ? इसकी जिम्मेदारी आप और हम पर आती है, जो अहिंसा और सत्य को मानने का दावा करते हैं, जन-शक्ति का, शासन-मुक्ति का जिनका ध्येय है और गांधीजी की विरासत हमें मिली है, ऐसा जो समझते हैं। इसलिए कमांड का कोई सवाल है नहीं। यह हमारा बिल्कुल स्पष्ट कर्तव्य है। जो शांति-सेना में नाम देंगे, वे लिखित सैनिक होंगे, परंतु अलिखित सैनिकों के तौर पर लाखों-करोड़ों लोगों को इसमें शामिल होना चाहिए।

प्रश्न : थोड़े समय के लिए शांति-सेना की आवश्यकता मान भी ली

जाय, तो भी उसके लिए आपको अपनी 'कमांडरशिप' जाहिर करने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई, जबकि आपका नेतृत्व भारत की जनता ने छः साल पूर्व और सर्वपक्षीय नेताओं ने ग्रामदान-सम्मेलन में मान ही लिया है ?

उत्तर : विनोबा न कभी नेता रहा है, न कभी नेता बननेवाला है, न वह कभी 'नेय' भी बननेवाला है । 'न नेयो, न नेता ।' गांधीजी ने जाहिर किया था कि यह व्यक्ति व्यक्तिगत सत्याग्रह के लायक है । विनोबा केवल व्यक्ति ही है, इससे ज्यादा और कुछ नहीं है, यह समझना चाहिए । जहां तक 'विनोबा' का ताल्लुक है, वह कमांडर दूसरा है और विनोबा दूसरा है ।

दूसरी बात यह है कि अपने जीवन में कई प्रकार की भक्ति के अनुभव लिये हैं । गुरुभाव, मातृवात्सल्य आदि अनेक प्रकार की भक्ति का रसास्वादन हमने चखा है । परंतु हमारे निज के जीवन में मैत्री का ही विकास हुआ है, दूसरे प्रकार का नहीं । अपने सगे भाई के साथ हम मैत्री का ही व्यवहार करते हैं । न हमने किसीको गुरु माना है, यद्यपि गुरु की योग्यता हम समझते हैं और न हम किसीको शिष्य बनाते हैं, यद्यपि पचासों विद्यार्थियों को हमने पढ़ाया है । हमारे भाई भी हैं, परंतु हमने किसीको न भाई माना है, न दुश्मन माना है । मित्र के नाते सलाह के सिवाय दूसरी कोई चीज हमसे नहीं बनी है, न बन सकती है । परंतु वह 'कमांडर विनोबा' दूसरा है । वह कौन है, मैं नहीं जानता हूं ।

प्रश्न : क्या शांति-सैनिक को रामनाथपुरम् जैसे उपद्रवों के बीच में शांति-स्थापना के हेतु भेजा जा सकता है, जहांकि लाठियां और गोलियां चल रही हैं ? वहां तुरंत काबू कैसे करेंगे ?

उत्तर : यह मैं भी नहीं जानता । इसलिए मैंने कहा कि इसमें आपको हिदायत नहीं मिलनेवाली है । कर्त्तृत्व इतना विभाजित होगा कि आप उस क्षण सलाह मांगेंगे, तो भी नहीं मिलेगी । इतना अतिरिक्त कर्त्तृत्व आप पर लादा जायगा । जो खुद यहां बैठा है, वह आपको क्या सलाह देगा कि मोरचे पर जाओ । इसलिए मैं सलाह नहीं देता हूं । परंतु 'गीता

प्रवचन' में मैंने एक मिसाल दी है कि सभा में गड़बड़ हो रही है। वहां १०-२० स्वयंसेवक जाते हैं और शांति रखने की कोशिश करते हैं, परंतु शांति नहीं होती है। लेकिन एक ऐसा शख्स है, जो वहां आया और उतने में ही शांति हो जाती है। शांति-स्थापना की बात आत्मशक्ति पर निर्भर है, इसलिए जितनी आत्मशक्ति विकसित होगी, उतना काम होगा। सत्पुरुषों का वर्णन करते समय उनके आंतरिक गुणों का वर्णन किया जाता है। कहा जाता है कि उसने किसी पर कृपाकटाक्ष डाला, तो बहुत बड़ी बात है। जिसकी आंखों में ही करुणा भरी हुई हो, ऐसा मनुष्य वहां जायगा, तो उसके जाने से ही शांति होगी। इसलिए उसकी कोई विधि नहीं है। वहां जाने पर क्या होगा, यह तो वहीं मालूम होगा। वह अंतर की स्थिति पर निर्भर है।

(निवेदक-शिविर, मैसूर, २७-९-५७)

: ५ :

शांति-सेना में कर्तव्य-विभाजन और विचार-शासन

प्रश्न : विचार-शासन और कर्तृत्व-विभाजन की बात आपने चांडिल में कही थी। अब आप आचार-नियमन की बात करते हैं, तो क्या चांडिल-वाली प्रक्रिया कायम है या उसमें कोई फर्क पड़ा है ?

उत्तर : शांति-सेना की रचना में परिपूर्ण कर्तृत्व-विभाजन है। खयाल यह है कि सारा हिंदुस्तान सत्तर हजार हिस्सों में विभाजित किया जाय और उस-उस हिस्से में एक-एक मनुष्य रहे और वह अपनी स्वतंत्र बुद्धि से वहां काम करे। उस बुद्धि की कोई सप्लाई (रसद) कहीं से होने की कोई योजना हमारे पास नहीं है। अब अपने लिए, अपने सिद्धांतों के लिए और उस समूह के लिए, जिसका वह सेवक बना है, स्वतंत्र रीति से जिम्मेदारी है। अगर वह स्वतंत्र न हो, तो वहां वह काम कर ही नहीं सकता है, उसे

कुछ सूझेगा ही नहीं। हर मौके पर वह सवाल पूछेगा, तो उत्तर देनेवाला दे भी नहीं सकेगा। उत्तर देनेवाला उस स्थान में तो नहीं रहेगा। इसलिए पूरी जिम्मेदारी, कर्त्तृत्व विभाजित होता है और विचार-शासन उसके लिए प्रमाण है। अपने विचार से वह सबकी निरंतर सेवा करे, सबके परिचय में रहे, सबके सुख-दुःख को पहचाने, सबके सुख से सुखी हो, सबके दुःख से दुःखी हो, उसका कोई अपना सुख-दुःख न हो और मौके पर अत्यंत प्रेमपूर्वक, निर्वैर भाव से ही नहीं, बल्कि मातृवत् वासल्य-भाव से अपना बलिदान देने के लिए वह तैयार रहे। इसके सिवा दूसरा कोई शासन उसके पास नहीं है। इस तरह विचार-शासन और कर्तृत्व-विभाजन की परिपूर्ण योजना वहां होती है, जहां आप इस प्रकार का आयोजन करते हैं। उन (हिंसक) पलटनों का आयोजन इस प्रकार से नहीं होता है। उन्हें एकत्र रखा जाता है, विशेष प्रकार से ट्रेनिंग दी जाती है, उन्हें यांत्रिक बनाया जाता है, बाहर के किसी विचार का उन्हें स्पर्श न हो, ऐसी योजना की जाती है, जिससे कि उनमें बुद्धि-भेद पैदा न हो। परंतु हमारी योजना में तो विश्व में जो विचार-प्रवाह चलते हैं और जिनकी प्रतिक्रियाएं समाज के चित्त पर होती हैं, उन सबका जागृत भाव से, स्वतंत्र बुद्धि से, विश्लेषणपूर्वक चिंतन करना सेवकों का कर्तव्य है। किसी भी विचार को ग्रहण करने के लिए या उसका परित्याग करने के लिए वह मुक्त है, बल्कि अगर वह किसी हकीकत से परिचित नहीं रहेगा तो, उसकी वह अक्षम्य गलती मानी जायगी। दुनिया के किसी ज्ञान से उसे वंचित रखने की बात नहीं है, बल्कि दुनिया के कुल ज्ञान से उसे अपने-आपको परिचित रखने की बात है। तिस पर भी यह कमांड कहां आती है?

मान लीजिये कि एक क्षेत्र में काम करनेवाला सेवक अपने क्षेत्र में बाहरी मदद चाहता है। तब फिर सवाल आता है। हां, वह यदि मदद नहीं चाहता है तो फिर कोई सवाल ही नहीं उठता। फिर वह अपना एकाकी सरदार है ही। अपना काम कर रहा है, स्व-समर्थ है। सारा भारत निश्चित है कि देश में अशांति की योजना है, तो उसके साथ शांति की भी योजना है,

कोई फिक्र है नहीं । परंतु बाहर से कोई मदद चाहता हो, ऐसा प्रसंग भी कभी आ सकता है । उस हालत में तुरंत मदद भेजी जानी चाहिए । उसमें देर न होनी चाहिए और वह मदद ऐसे लोगों को पहुंचनी चाहिए, जोकि श्रद्धालु हैं। यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि दूसरे के क्षेत्र में जाकर चिकित्सक बुद्धि का उपयोग हम नहीं कर सकते हैं । वहां जाकर वहां काम करनेवाले मनुष्य की कमांड (आज्ञा) माननी होती है, उसे वहां के अनुकूल होना होगा, क्योंकि उसे मदद देनी है । इसलिए वह श्रद्धा से काम करनेवाला होना चाहिए और उसे आदेश देकर उस स्थान में तुरंत भेजनेवाली कोई एजेंसी चाहिए । फिर वह एजेंसी किसी व्यक्ति की हो, तो अधिक श्रद्धास्पद होगी या किसी समूह की हो, तो अधिक श्रद्धास्पद होगी, इसका निर्णय मानव को अभी करना बाकी है । बहुत बोला जाता है कि वीरपूजा नहीं होनी चाहिए, परंतु 'अवीरपूजा' हो ही नहीं सकती । वीरपूजा नहीं होनी चाहिए, यह हम तब तक बोलते रहेंगे, जब तक कोई वीर सामने खड़ा नहीं होता है । हम खूब ऐंठ करें कि हम निर्गुणपूजक हैं; सगुणपूजक नहीं हैं; परंतु यह तब तक चलता है, जब तक सगुण का साक्षात्कार नहीं होता है । जहां सामने सगुण खड़ा होता है, वहां हमने ऐसा कोई निर्गुणवादी नहीं देखा, न सुना, जिसका सिर वहां न झुका हो ! यह हर क्षेत्र में होता है । इसलिए वीरपूजा का उतना डर नहीं है, जितना अवीरपूजा का डर है । ऐसे अवीरों का महत्व सामूहिक योजना के कारण बढ़ जाता है । लोग चुने जाते हैं और उसके तरीके ऐसे होते है कि जो चुने जाने के लायक हैं, वे उससे अलग रहते हैं और जो वास्तव में लायक नहीं हैं, वे ही चुने जाते हैं ! इसलिए सामूहिक योजना विश्वसनीय है या कोई श्रद्धेय व्यक्ति विश्वसनीय है, इसका निर्णय अभी समाज को करना बाकी है । अगर यह हो कि सामूहिक योजना से फैसला हो, तो अधिक स्फूर्ति आती हो और उतनी व्यक्ति-निरपेक्षता वास्तव में हममें आती है, तो अच्छा ही है । हमें व्यक्ति-निरपेक्ष तो जरूर बनना चाहिए । जहां तक विचार का ताल्लुक है. "विचार विरुद्ध व्यक्ति" ऐसा सवाल खड़ा हो, तो विचार ही प्रधान है, व्यक्ति को कोई हैसियत नहीं

है। परंतु एक जगह विचार के साथ व्यक्ति है और दूसरी जगह व्यक्तिहीन विचार है, तो चूंकि हम स्वयं देहधारी हैं, इसलिए वह विचारयुक्त व्यक्ति अवश्य श्रद्धेय साबित होगा। ऐसी अभी तक समाज की स्थिति है। आगे विचार की निष्ठा सर्वत्र फैली हुई होगी, एक-दूसरे से विचार-विमर्श करने की भी जरूरत नहीं रहेगी, तब उस हालत में, समाज आगे बढ़ सकता है। परंतु बौद्ध धर्म में भी उन्होंने 'बुद्धं शरणं गच्छामि' से आरंभ किया। हमें समझना चाहिए कि एक पॉइंट (बिंदु) होता है, जहां मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती। वैसे बुद्धि बहुत ही काम करती है, वह बलवान है। परंतु एक बिंदु ऐसा उपस्थित होता है, जहां बुद्धि काम नहीं करती है और वहां श्रद्धा काम देती है। यह श्रद्धा का तत्व बुद्धि के विरुद्ध नहीं है, बुद्धि का मददगार है। अब सवाल इतना ही है कि एक मध्यवर्ती एजेंसी खड़ी हो जो लोगों को सूचना दे कि फलानी जगह फलाने दस मनुष्यों को जाना है। उस एजेंसी के जरिए आदेश मिलने पर अपने-अपने कार्य को छोड़कर अपने कुटुंब का भी परित्याग करके जाना होगा। इसमें अपना बलिदान देना, यह बहुत बड़ी बात नहीं है, परंतु कुटुंब का परित्याग करना कठिन है। और बहुत सारे कुटुंबवाले गृहस्थ होते हैं। उस हालत में अपना छोटा बच्चा, जो अभी बारह दिन हुए पैदा हुआ, उसकी माता लाचार पड़ी है और उधर से हुक्म आया, तो यह सब छोड़कर जाना होगा। अपना बलिदान तो देना ही है, जबकि उसने शांति-सैनिक बनने की प्रतिज्ञा की है। उसकी उतनी तैयारी है ऐसा मान लीजिये और उसके हृदय में सर्वोदय-विचार भरा हुआ है इसलिए प्रेमपूर्वक अपना बलिदान देने की उसकी तैयारी है, यह भी मान लिया, यद्यपि ये दोनों बातें कठिन हैं, फिर भी मान सकते हैं। लेकिन सबसे कठिन बात है, प्रियजनों का वियोग और कयाम के लिए उन्हें छोड़कर जाने का प्रसंग और आज्ञा, कमांड तो है कि फौरन जाना चाहिए!

ज्ञानदेवकृत 'अमृतानुभव' का एक वाक्य मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। उसमें ज्ञानदेव ने गुरु का वर्णन किया है—"आतां उपाय-वन

वसंतु । आज्ञेचा आहेव तंतु ।"—गुरु के स्वरूप का वर्णन है कि उपाय-रूपी वन का वह वंसत ऋतु है । जैसे वसंत ऋतु के होने से सारा वन प्रफुल्लित हो उठता है, वैसे गुरु के होने से शिष्यों को उतनी साधना करनी ही नहीं पड़ती है । एकदम साधना का उत्कर्ष होता है, गुरु-दर्शन से, गुरु की मदद से साधकों की साधना प्रफुल्लित हो उठती है । यह तो गुरु का एक वर्णन हुआ । और दूसरा वर्णन है, 'आज्ञेचा आहेव तंतु ।' आज्ञा कोई स्त्री है ऐसा मानो । वैसे 'आज्ञा' शब्द स्त्रीलिंग है भी । स्त्री का सौभाग्य-तंतु माना गया है पति । यह पुरानी भाषा है, इसलिए पुरानी दृष्टि से ही उसकी ओर देखिये, आधुनिक दृष्टि से नहीं । ज्ञानदेव ने लिखा है कि अगर गुरु नहीं होते, तो आज्ञा विधवा हो जाती । दुनिया में किसीकी आज्ञा नहीं चलती है, सिर्फ गुरु की चलती है, क्योंकि गुरु में ज्ञान भी है और प्रेम भी है और सत्ता बिल्कुल ही नहीं होती है और सत्य तो होता ही है । य सब जहां इकट्ठे होते हैं, वहां आज्ञा बिल्कुल टाली ही नहीं जाती है । और दुनिया में आज्ञा अगर कहीं सौभाग्यवती है, तो उस गुरु के कारण ही । किसी सरकार के कानून का वैसा अमल नहीं होता है, किसी सेनापति के हुक्म का वैसा पालन नहीं होता है, जैसा गुरु के वचन का होता है । तो मैं कहना यह चाहता हूं कि मनुष्य को अपना उत्सर्ग करने की प्रेरणा होती है, वह किसी एजेंसी के जरिये कम होती है । इसलिए आखिर किसी श्रद्धेय व्यक्ति का नाम लेना होता है । इसके सिवाय कहीं भी—शांति-सेना में भी— आज्ञा का नाम आता ही नहीं ।

एक सवाल यह खड़ा होता है कि एक दफा आज्ञा की आदत पड़ गई, तो परिणामस्वरूप क्या रेजीमेंटेशन (सैन्यीकरण) नहीं आयगा, क्या जीवन के दूसरे क्षेत्रों में उसका स्पर्श नहीं होगा ? सोचने की बात है कि अगर तैरने के लिए यह विधान बताया जाय कि आपको नदी में खड़े नहीं होना है, लेटना है, तो क्या आपको लेटने की आदत पड़ जायगी और किनारे पर भी आप खड़े होने के बजाय लेटेंगे ? लेटने का विधान नदी तक ही सीमित है । किनारे आने पर खड़े ही होना है । जीवन में कुल-का-

कुल दिमाग जिसका आजाद होगा, वही शांति-सेना की आज्ञा का पालन कर सकेगा। जो ऐसा बुद्धू होगा, गुलाम होगा कि हर मौके पर सिर झुकाता होगा, स्वतंत्र चिंतन नहीं करता होगा, वह इस आज्ञा का पालन कभी नहीं कर सकेगा। जिसका सिर पचास मौके पर झुकता है, वह भगवान के सामने कभी न झुकेगा। जिसे गुलामी की आदत पड़ गई, वह ऐन मौके पर आज्ञा का पालन करने में असमर्थ साबित होगा। शांति-सेना में आदेश दिया जायगा कि फलानी जगह जाकर काम करो। तो क्या आपको वहां जाकर मर मिटना है, केवल इतना ही काम सौंपा गया है ? बल्कि आपको आदेश दिया जायगा कि अपनी बुद्धि का परिपूर्ण उपयोग करके, कृपा करके जीवित वापस आइयेगा। वह आप नहीं कर सके, इसलिए बलिदान करने की बात आयगी। आपको यह आदेश नहीं जायगा कि वहां जाकर, नजदीक कहीं नदी देखो और उसमें डूब मरो ! जहां दूसरी किसी भी प्रकार की मदद पहुंचाये बिना, कोई आयोजन किये बिना, आपको एक पागल समाज के सामने फेंक दिया जाता है, वहां आपको अपनी बुद्धि की, स्वतंत्र विचार की पराकाष्ठा करनी होगी। आपको प्रत्युत्पन्नमति होना होगा, कर्मकुशलता की भी वहां कसौटी होगी और आप योगी हैं, यह बात उस मौके पर सिद्ध या असिद्ध होगी।

इसलिए इसमें किसी प्रकार का खतरा नहीं है। भाषा में 'कमांड' शब्द है। पर भाषा तो समझाने के लिए इस्तेमाल की जाती है ? ईसामसीह ने 'कमांड' शब्द इस्तेमाल किया था। अंतिम समय उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि तुम एक-दूसरे पर प्रेम करो—"ए न्यू कमांडमेंट आई हैव गिवन टु यू"। यह उनकी भाषा है। अब उसका अर्थ क्या है, आप देखिये। कमांड यही है कि प्रेम करो। यह बिल्कुल प्रेम की परिभाषा है। हमने कल व्याख्यान में नानक का वचन सुनाया, जिसमें, 'हुक्म' शब्द इस्तेमाल किया गया है। एक प्रसंग आता है कि जहां गुरु, परमेश्वर, सत्य इनमें भेद ही नहीं रहता है, ये सब पर्यायरूप हो जाते हैं, ऐसी निष्ठा जब पैदा होती है, तब मनुष्य अपने को झोंक देता है। इसलिए शांति-सेना में विचार

की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं आती है और 'रेजीमेंटेशन' (सैन्यीकरण) का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता है।

जगह-जगह नेता बनाये जायं, यह जरूरी नहीं है। परंतु जगह-जगह गुरु, मार्गदर्शक उपलब्ध हों, तो खुशी की बात है, दुःख की नहीं। ऐसे उपलब्ध नहीं होंगे और उनकी जरूरत भी नहीं है, परंतु अगर हों, तो क्या हर्ज है ? आपके पास रेफरेंस (संदर्भ) के लिए डिक्शनरी पड़ी है, तो उससे आपको कोई तकलीफ नहीं होगी। यह डिक्शनरी आपसे यह नहीं कहेगी कि आप कौन-सा शब्द इस्तेमाल करें। आप विचार जरूर करें। परंतु जहां आपको जरूरत पड़ेगी, वहां उसको 'रेफर' किया (संदर्भ लिया) जाता है; वैसे ही कोई नेता हो, तो रेडी रेफरेंस (तात्कालिक संभर्द) के लिए आपके पास कुछ कहे, इतना ही समझना चाहिए। शांति-सेना के काम में आपको दो शब्द कहे जायंगे कि 'वहां पहुंचो।' इसके सिवाय और कोई आज्ञा नहीं होगी और कोई बौद्धिक मदद भी आपको नहीं मिलनेवाली है। कुल की कुल बौद्धिक मदद आपको अंदर से निकालनी पड़ेगी। नहीं तो ऐसे खयाल से कोई शांति-सैनिक बनेगा कि इसमें सोचने की बात है नहीं, बाबा आज्ञा देता रहेगा, तो वह इसे ठीक नहीं समझा। अपनी बुद्धि का पूर्ण उपयोग करने की आपकी जिम्मेदारी रहेगी। आप बिल्कुल एकाकी भेजे जायंगे, जैसे हनुमान को लंका भेजा गया था। तुलसीदास ने लिखा है कि जगह-जगह हनुमान 'अति लघु रूप धरि' पैठते थे। रूप तो उनका पहले ही से विशाल था, परंतु उसे वह वहां प्रकट नहीं करते थे, लघु रुप प्रकट करते थे। ऐसे मौके पर लघु रूप प्रकट करना ही बुद्धि का लक्षण है। वह बुद्धि आपमें होनी चाहिए। फिर कहीं ऐसा विभीषण देखना चाहिए जो अपने लिए सहानुभूतिवाला हो, तो वहां पांव रख सकेंगे। याने शांति-सेना के सैनिक की सारी प्रक्रिया हनुमान की प्रक्रिया है। इस तरह बहुत कुशलता से काम करना होगा। वह काम सैनिक की बुद्धि से होगा। पर जहां ऐसी अवस्था आये कि बुद्धि से काम नहीं होगा, सामनेवाले की बुद्धि पर जड़ता के बहुत पर्दे हैं, ऐसी हालत में प्राणार्पण करने की जरूरत पड़ेगी, तो वह

भी किया जायगा। उसका फल स्थूल रुप से मिलेगा या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं है। वह परमेश्वर की योजना में मिलेगा ही। केवल बलिदान का परिणाम नहीं होगा, शुद्ध बलिदान का परिणाम होगा।

(निवेदक-शिविर, मैसूर, प्रातः ता० २७-६-५७)

⊙